CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

y-1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरे ! यह कैसा मन ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरे ! यह कैसा मन ?

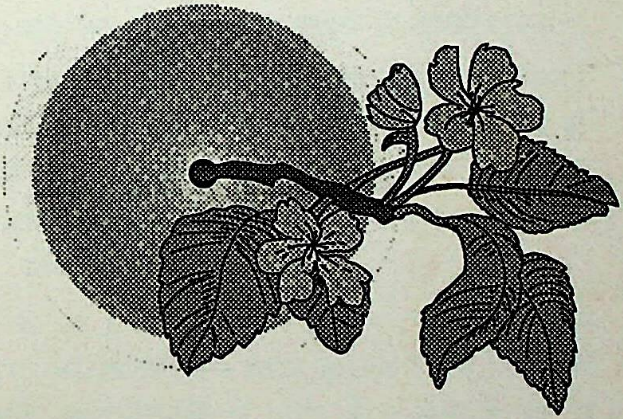

शान्तिकुमारी बाजपेयी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक
शान्तिकुमारी बाजपेयी
द्वारा / प्रो. प्रेमलता शर्मा
'आम्नाय'
करौंदी, वाराणसी-२२१ ००५
© शान्तिकुमारी बाजपेयी

प्रथम संस्करण : १९९५ ई.
मूल्य : पंचास रुपये

वितरक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी-२२१ ००१

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रांनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा. लि.
चौक, वाराणसी-२२१ ००१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेखिका की ओर से

जीवन को जीते हुए सर्वप्रथम व्यवधानों का ही अनुभव हुआ, अतः 'व्यवधान' का नाम ग्रहण कर प्रथम उपन्यास साहित्य में अवतरित हुआ ।

पाठकों की प्रशंसा पाकर लेखनी में शक्ति का नवीन सञ्चार हुआ। जीवन में अनुभव हुआ कि सुख-दुःख, आशा-निराशा, सफलता-असफलता की लहरों में डूबते-उतराते जीना पड़ता है । अतः "नदी, लहरें और तूफान" को जीवन मिला, पाठकों की अनवरत प्रशंसा मिली, साथ ही मिला उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कार।

अब सामने आ रहा है मेरा यह नवीन उपन्यास—"अरे ! यह कैसा मन ?"—इसमें मानव-मन की नैसर्गिक-प्रवृत्ति दिखाते हुए एक जिज्ञासु निर्भीकमना किशोरी की आत्मकथा स्वभावोक्ति-रीति से वर्णित है । आशा है यह भी पाठकों को आनन्दित करेगा, सात्त्विक प्रसन्नता में मग्न करेगा ।

इन सभी रचनाओं के अवतरित-प्रकाशित होने में मेरी अनुजा-सदृश परम विदुषी डॉ॰ प्रेमलता शर्मा का योगदान अन्तःसलिला सरस्वती का स्थान लिये हुए है । प्रस्तुत उपन्यास के प्रकाश में आने का श्रेय भी इन्हीं कीर्तिमती को जाता है ।

शान्तिकुमारी बाजपेयी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

श्रीमती शान्तिकुमारी बाजपेयी का यह तीसरा उपन्यास दो दृष्टियों से अनूठा है। एक तो इसकी आत्मकथापरक शैली और दूसरे गद्य-पद्य-मिश्र चम्पू-सदृश रूप—ये दोनों ही इसे वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं।

कथासूत्र में विशेष कसाव न होने पर भी मानव-मन की गहराइयों में झाँक कर उसके अन्तस्तल का प्रत्यक्ष कराने की लेखिका की शक्ति रोचकता को निरन्तर बनाये रखती है।

रस की भाषा में बात करें तो शृङ्गार को इसमें भरपूर स्थान मिला है। लम्बा पूर्वराग, फिर मिलन, अन्त में सदा के लिये वियोग, इस प्रकार शृङ्गार के क्रमशः परिपाक और उसकी करुण में परिणति—इन सबका यहाँ मार्मिक चित्रण है।

रचना के अन्तिम अंश में नायिका को स्वयं द्वारा उपेक्षित प्रेमी के आजीवन प्रेम-व्रत-परिपालन और देहपात की बात जब ज्ञात होती है, तब उसके चित्त में करुण रस का एक पृथक् स्रोत फूट उठता है। उसके अन्तर्मन की भीतरी तह में छिपा प्रेम उभर कर जब घोर मन्थन को जन्म देता है, तब मन की जटिलता से साक्षात्कार होता है और "अरे ! यह कैसा मन ?" इस उद्गार को सार्थकता मिलती है।

रामनवमी २०५२
९.४.१९९५

प्रेमलता शर्मा
"आम्नाय"
करौंदी, वाराणसी-५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरे ! यह कैसा मन ?

मैं उस समय किशोरी थी । मेरे जीवन के वसन्तागमन में अभी कुछ समय शेष था । भावी वसन्त के सौन्दर्य की झलक किशोरावस्था में ही मिलने लगती है । किसी भी किशोरी में विवेक की, समझ की न्यूनता होती है । उस समय उसके मन और शरीर दोनों ही तो चंचलता के उच्चतम शिखर पर दौड़. कर चढ़ जाते हैं । जिज्ञासु, निर्भीकमना किशोरी उस शिखर पर दौड़ती है– असावधानी उसे रसातल में फेंक सकती है, इसका उसे ज्ञान ही नहीं रहता । मुझे भी ज्ञान नहीं था । फिर भी मैं रसातल में नहीं गिरी । मेरा प्रारब्ध मुझे ऐसे रमणीक मनोरम प्रदेश में ले गया कि क्या बताऊँ ! आज भी उसकी मधुर स्मृतियाँ तन–मन को पुलक से भर जाती हैं । प्रसंग आने पर उस मधु के माधुर्य की अनुभूति आपको भी कराऊँगी–रत्तीभर ही सही ।

मैं सुन्दर थी । जो मुझे देखता–कहने लगता–''कैसी सुन्दर, मनमोहनी मूरत है ! कितना भोलापन है इसके मुख पर ! आँखें कैसी स्निग्ध आभा से दीप्त ! झिलमिल करता कंचन वर्ण !'' आज वह सब याद आने पर मुझे स्वयं हँसी आ जाती है, सच बताऊँ ? सच मुझे दुःख नहीं होता, परिवर्तन ही तो जीवन है, तो क्या मानवरूप अपरिवर्तनशील हो सकता है ? नहीं न ? तो फिर काहे का दुःख !

कुछ ही दिनों में मैंने जाना कि लड़की होना खतरे से खाली नहीं । लड़की की जीवन–यात्रा, उसका जीवन–पथ इतने गड्ढों से भरा होता है कि प्रत्येक पग सतर्कता से आगे रखना पड़ता है । तनिक–सा अविवेक, कितना घातक हो जाता है । प्रकाश की किरणें जहाँ झाँकने तक नहीं जातीं, ऐसे कालिमाभरे अन्धकार से युक्त गड्ढे में जरा सी असावधानी से जा पड़ने पर कितनी ही लड़कियों का भविष्य कालिख से लिप–पुत जाता है । खैर, वह सब यहाँ बताना मेरा ध्येय नहीं । समझने वाले आप ही समझ जायेंगे ।

जैसे–जैसे दिन बीतते गये मेरी देह की स्निग्धता के साथ–साथ मेरा मन भी स्निग्ध होता गया । मनोनुकूल व्यक्ति, किशोर हो या किशोरी, उसे देखने पर मैं चौंकती, उसे देख लेती । मुझमें एक दुर्बलता थी, मैं खुले स्वभाव की नहीं थी– इसीलिए जो किशोरियाँ मेरे साथ मित्रता का गठ-बन्धन कर सकीं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनकी संख्या अति अल्प रही । मेरी मित्रता किसी किशोर से नहीं हो सकी– शायद यह उस युग का प्रभाव था ।

उस समय कन्याओं को किशोरावस्था में ही विवाह के बन्धन में बाँध देने में सफलता प्राप्त कर लेना गुरुजनों की बुद्धिमत्ता की कसौटी मानी जाती थी । मेरी नानी, जिनके पास मैं लगभग प्रति ग्रीष्मावकाश में कुछ दिनों तक रहती थी, इस कसौटी पर खरी उतरना चाहती थीं । हीरे–मोती से भरे भण्डार की स्वामिनी के एकमात्र पुत्र से मेरा सम्बन्ध कर देने का स्वप्न उन्होंने देखा– वह स्वप्न सत्य के धरातल पर नहीं उतर पाया, मेरे अहोभाग्य ! आप पूछेंगे क्यों ? किसी की भी हँसी उड़ाना अवांछनीय है । सच ! मैं किसी की हँसी उड़ाने के उद्देश्य से यह घटना नहीं बता रही हूँ । केवल अपनी ही नादानी की कथा सुना रही हूँ । कल्पनातीत स्थूलकाय पात्र को देखकर मेरी नानी जी तो मौन ही रहीं, किन्तु छोटी मौसी उसे देखते ही कह उठीं–"अरे ! यह हाथी !"– सुनते ही मेरी नानी ने मौसी के मक्खन जैसे कोमल कान लाल कर दिए, और मैंने जब उस पात्र की पूरी झलक पाई तो पसीने–पसीने हो गयी, मौसी की गति देख चुकी थी । मेरी आतंकित वाणी कण्ठ में ही छिप कर कह उठी– "अरे बाप रे ! क्या इन्सान भी इतना मोटा हो सकता है !"

नानी के उस मौन से ही बात समाप्त समझी गयी । कुछ ही दिनों बाद उस कोषाधिपति का विवाह जिस भाग्यशालिनी से हुआ, और जिसे हीरे–मोती का भार दुर्वह हो गया, उस तन्वंगी सुकुमारी किशोरी का नाम था "कुसुम" । यह कैसी विडम्बना ! किन्तु इस जीते–जागते जगत् में कितने प्रकार की विडम्बनायें हैं, क्या कोई भी गिन सकता है ?

वह असहयोग आन्दोलन का युग था । नमक–सत्याग्रह के दिन थे । चारों ओर देश–प्रेम उमड़ रहा था । उस प्रवाह में मेरी दोनों बुआजी को छोड़ कर हमारे घर के सारे सदस्य बह रहे थे । न घर की चिन्ता, न बच्चों की । बड़ी बुआ जी का अटूट, अखण्ड विश्वास था कि स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर की चहारदीवारी के भीतर ही है, इसलिए छोटी बुआजी भी आन्दोलन से अछूती रहीं । देशव्यापी उद्वेलन का दोनों बुआजी पर बड़ा ही सीमित प्रभाव था । नमक–सत्याग्रह में कानून–भंग करने के अपराध में नमक बनाते हुए मेरे फूफाजी, उनके दोनों छोटे भाई और मुनीम जी क्रमशः गिरफ्तार कर लिए गये । कारागारवास का दण्ड पाकर ये सभी कारागारबद्ध हो गये । गृह–संचालन तो बड़ी बुआजी करती थीं–पर गृह की सुरक्षा का प्रश्न उठ खड़ा हुआ । फूफाजी आढ़त का कार्य करते थे । उनके व्यापार का क्षेत्र व्यापक था । अधिकांश व्यापार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की देखरेख उनके सहयोगी मित्र श्री विश्वरूप करते थे । वे भी नमक-कानून भंग करते हुए पकड़े गये और कारागार-बद्ध हो गये । इस परिस्थिति में हमारे घर की सुरक्षा का कुछ तो प्रबन्ध होना ही चाहिए था । अतः विश्वरूप जी के पुत्र श्री अरूप को यह उत्तरदायित्व सौंपा गया । अरूप जी गान्धीवादी होने के साथ ही अपने पिता की आज्ञा को ब्रह्मवाक्य मान कर स्वीकार कर लेते थे । पिता से आन्दोलन में भाग लेने की आज्ञा अरूप नहीं प्राप्त कर सके । उन्हें मन मारकर रह जाना पड़ा । विश्वरूप जी का कहना था कि जिनके घर के सारे पुरुष जेलों में डाल दिए गये हैं, उन घरों की देखभाल करना भी देश-सेवा है । अरूप को यही सेवाभार सौंपा गया । हमारे घर की बाहरी व्यवस्था की देखभाल अरूप के हाथों चली गयी ।

घर के नये प्रबन्धक से मैं परिचित तो थी, किन्तु उनका शासन स्वीकार करना होगा-इस बात से मैं अनभिज्ञ थी । अपने से दो दिन छोटे फुफेरे भाई, छोटी बुआ जी के बड़े पुत्र पराग को लेकर मैं बहुधा अपनी सहेलियों के यहाँ चली जाती थी । एक दिन घर लौटते समय जैसे ही मैंने देहरी पर पैर रखा कि अरूप जी का सामना हो गया-मुझे देखते ही वे बोले-''इतनी देर तक घर के बाहर रहती हो ?''

सुनते ही मन में विद्रोह उमड़ा, मेरे नेत्रों तक आकर रुक गया । मैंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । एक प्रकार से उपेक्षा का भाव दिखाती हुई मैं भाई के हाथ पकड़े सीढ़ियाँ चढ़ती हुई अपने कमरे में पहुँच गयी ।

अगर सच कहूँ तो अरूप जी एक बड़े ही शिष्ट, सुसंस्कृत और स्नेही प्रकृति के युवक थे । मैं उन्हें अच्छी लग गई । क्यों अच्छी लग गई ? अरे ! यह भी कोई पूछने की बात है ? जो सुदर्शन है, नेत्ररंजक है, यदि वह किसी की आँखों के मार्ग से उसी के हृदय में उतर कर वहीं बस जाये, डेरा डाल कर वहीं बैठ जाये, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? अरूप जी धीरे-धीरे मुझे कितना प्यार करने लगे, मुझे कुछ नहीं मालूम । कालान्तर में मुझे इतना अवश्य मालूम हुआ कि उनके मन में मुझे पाने की बड़ी ललक थी । उन्होंने कभी मुखर होकर प्रेम-निवेदन नहीं किया, किन्तु उनकी अनुराग-भरी पावन दृष्टि मुझ पर बरसती रहती थी । मुझ पर उसका कुछ भी प्रभाव न था । मानव-प्रकृति कितनी विचित्र थी ! कितनी रहस्यमयी ! अब, आज इतने लम्बे अन्तराल के पश्चात् मैं सोच रही हूँ कि वह कौन सा कारण था जिससे मैं उस तीर्थ-समान युवक से दूर रही ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक दिन अरूप जी के घर से मुझे ले जाने के लिए महरी आई, कहा कि माँ जी ने बिटिया को बुलवाया है, एक ज्योतिषी महाराज आए हैं, वे कन्या के माध्यम से यह बता देंगे कि अरूप भइया का छोटा भाई जो कुछ साल पहले अचानक ही घर से गायब हो गया था, कब लौटेगा ।

बड़ी बुआ जी ने तुरन्त ही मुझे महरी के साथ अरूप जी के घर भेज दिया । वहाँ पहुँचते ही अरूप जी की अम्मा ने मेरे पैर धोकर, रोली का टीका लगा, फूलमाला पहना कर एक चौकी पर बैठा दिया । ज्योतिषी महाराज ने मेरे बायें हाथ के अंगूठे के नाखून पर गाढ़े काजल का लेप लगाया–कहा--

"बच्ची ! अँगूठे में ध्यान से देखो ।"

मैंने दृष्टि गड़ाकर बड़े ही ध्यान से देखा--

"मुझे तो कुछ भी दिखाई नहीं देता"–मैंने ऊबते हुए कहा ।

"कुछ भी नहीं दिखाई देता ? एक लम्बा सा लड़का खड़ा है--

खड़ा है न ?" ज्योतिषी ने कुछ डपटते स्वर में कहा ।

कुछ भय से, कुछ थकान से मैंने असत्य बोल दिया--

"हाँ, लड़का तो दिखाई देता है ।"

"तो पहले क्यों नहीं बताया ?" कहते हुए ज्योतिषी की वाणी सफलता से कुछ और अधिक कठोर हो आई ।

और मैं ?

आतंकित, भयभीत, मुक्ति पाने के लिए छटपटाने लगी ।

"अब फिर टकटकी लगाकर देखो, लड़के ने लिखकर कुछ बताया है-

पढ़ो, ठीक से पढ़ो, क्या लिखा है ? क्या बताया ? घर कब लौटेगा ?"

मैंने फिर एक बार अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाते हुए अँगूठे के नाखून को आँखें मल–मल कर देखा--

केवल काजल, गाढ़ा काजल और कुछ भी नहीं, अक्षर का नामनिशान तक नहीं । उस काजल ने ही मानो मेरी वाणी में श्यामता ला दी, असत्य को श्याम ही तो कहा जाएगा बाल–बुद्धि । मुक्ति के लिए तड़पन--

"वह घर कभी नहीं लौटेगा–यही तो लिखा है–ठीक तो पढ़ रही हूँ:" खीझ से भरी मैं एक ही साँस में कह गई ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे कोई बाँध अचानक ही टूट गया हो, अरूप जी की अम्माँ की आँखों से जल की धारा फूट पड़ी, उनका आँचल भिगोने लगी ।

मेरा मन कचोट उठा–आत्मग्लानि, आत्मधिक्कार से भर मैंने सोचा--कैसा अनर्थ कर डाला ! असत्य अनर्थ नहीं करता तो क्या करता ? जब असत्य ही बोलना था तो कह देती--"बहुत जल्दी लौट आएगा ।"

आश्चर्य है, उस थोड़ी सी उमर में ही मैं इतना सब सोच गई । उस दिन अरूप जी की भाभी मुझे अपने कमरे में ले गयीं, अपने पास बैठाए रहीं । उन्होंने अनेक स्वादिष्ट व्यंजन मुझे खिलाए । मुझे बहुत प्यार किया, और अधिक याद नहीं, इतना अवश्य याद रहा कि उस अकारण स्नेह–वर्षा से मैं चकित थी । चलते समय उन्होंने मुझे तितली के आकार के छोटे–छोटे स्वर्णनिर्मित कर्णफूल पहना दिए । मैं आज तक नहीं जानती कि उनका वह स्नेह–दान मुझे क्यों मिला था ! अनुमान करती हूँ कि अरूप जी ने ही उनको मेरे बारे में कुछ बताया होगा । क्या बताया होगा ? क्यों बताया होगा ? ठीक से कुछ भी नहीं पता । उस दिन अरूप जी ही मुझे घर पहुँचा गए । रास्ते में उन्होंने कुछ भी तो नहीं कहा ।

इसके कुछ ही दिनों बाद एक छोटी सी घटना घटी । मैंने "एंग्लो–वर्नाक्युलर मिडिल" की परीक्षा दी थी । परीक्षा–फल निकल गया था । फूफा जी तो जेल में थे । परीक्षा-फल जानने की बात कौन सोचता ! उन दिनों लड़कियों की पढ़ाई–लिखाई महत्व ही क्या रखती थी ! किन्तु अरूप जी अपनी जिम्मेदारी निभा रहे थे । हमलोगों के अनजान में ही वे परीक्षा–फल की प्रतीक्षा में थे । दोपहर में एक दिन मैं अपनी सहेली के साथ गुट्टे खेल रही थी कि उल्लास से उमगते अरूप जी ने पता नहीं किस दिशा से आकर मेरे मुँह में पेड़ा देते हुए कहा–"अरे ! देखो । मैं तुम लोगों के लिए कितनी बड़ी खुशखबरी लाया हूँ !"

उन्होंने परीक्षा फल का पन्ना मेरे सामने कर दिया–मेरे रोल नम्बर और नाम के नीचे गहरे लाल रंग की स्याही से रेखा खींची थी । उस लाल रंग की स्याही का अर्थ मैं उस दिन बिल्कुल नहीं समझी थी । अब समझ गई हूँ । अपने नगर की मैं ही एकमात्र छात्रा थी जो परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई थी । मेरे परिवार के लिए गौरव का विषय था, यही बात अरूप जी ने बुआ जी लोगों को समझाई, फिर तो उस दिन घर में खुशी की जो लहर उठी वह अपने साथ एक टोकरे मिठाई उस नगर के डिस्ट्रिक्ट जेल में जहाँ फूफाजी थे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहुँचा आई । अरूप जी के मन में हर्ष नहीं समा रहा था–जान कर मुझें कुछ विचित्र सा लगा था । उस दिन उन्होंने मुझसे ढेरों बातें की, किन्तु वे बातें प्रेम–चर्चा से कोसों दूर थीं ।

इसके बाद राजनीति के क्षेत्र में जब कुछ राहत आई तो तमाम राजनैतिक कैदी मुक्त किए गए । मेरे फूफा जी भी क्षीणकाय होकर कारागार से घर वापस लौट आए । मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा ।

उत्तरदायित्व से मुक्ति मिल जाने पर भी अरूप जी हमारे घर जल्दी–जल्दी आते रहते । हँसते–मुस्कराते वे आए दिन हम भाई–बहिन के लिए कोई न कोई उपहार लाते । उनका आना–जाना, बोलना, उपहार लाना, इतने स्वाभाविक ढंग से होता रहता था कि किसी का भी ध्यान उस ओर नहीं गया । इस प्रकार अरूप जी मौन वाणी में बहुत कुछ अनकहा मुझसे कहते रहे । पर मैं ? मैं उनकी, उनके उस पवित्र प्रेम की गहराई से अनभिज्ञ रही । उनके आने पर मैं प्रसन्न होती, बातें करती, सहर्ष उपहार भी ग्रहंण कर लेती–अपने भाई के साथ उनसे विनोद भी कर लेती । मेरा यह व्यवहार मेरे लिए कुछ भी महत्त्व नहीं रखता था, पर शायद उनके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया था । सच कहिए तो मेरी दशा तो उस बालक के समान थी जो भागीरथी के तट पर सूर्योदय की प्रथम बेला में अरुणिमा से रंगे रजत–कणों पर मुग्ध होकर तट के पारदर्शी उथले जल में नन्हें–नन्हें हाथों से छप–छप करता गंगोत्री से प्रवाहित जल का आनंद लेता रहता है । उसकी दृष्टि तट में ही अटक कर रह जाती है--तट के आगे भी ऐसा कुछ अथाह है जो उसे परमानन्द में निमग्न कर सकने की शक्ति रखता है, इस बात का उसे ज्ञान ही कब रहता है !

समय रेंगता हुआ आगे बढ़ता रहा और एक दिन अरूप जी इंजीनियरिंग का कोर्स करने रुड़की चले गये । जब कभी रुड़की से अपने घर आते हमारे यहाँ आना नहीं भूलते थे । महीने भर में एक चक्कर तो उनका अवश्य ही लग जाता होगा । धीरे–धीरे वे चक्कर बहुत ही कम हो गये । शायद माता–पिता ने समझाया कि बार–बार दौड़ कर घर आने से पढ़ाई में विघ्न पड़ता है ।

समय व्यतीत होते देर ही क्या लगती है ! वर्ष पर वर्ष बीतते गये । अरूप जी इंजीनियरिंग की परीक्षा में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त कर घर लौट आए । मैं तब तक बड़ी हो गई थी । बहुत कुछ समझ आ गई थी । इंजीनियर बन जाने की खुशी में अरूप जी ढेरों मिठाई लेकर हमारे घर आए । फूफा जी और बड़ी बुआ जी के पैरें को स्पर्श करते हुए बोले–''आप लोगों का आशीर्वाद मेरी सफलता का रूप लेकर आया है ।''

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरूप जी की निश्छल भावाभिव्यक्ति से फूफा जी के नेत्रों में स्नेह-जल छलक आया और बड़ी बुआ का मुख गौरव-प्राप्ति के गर्व से चमक उठा ।

मेरे पास आते हुए उस दिन अरूप जी के नेत्रों में क्या था ? कुछ था जरूर-मैं देख नहीं पाई-दृष्टि ही नहीं मिला सकी । एक प्रकार की झिझक और संकोच के भार से मैं दब गई । शायद यह वयः-सन्धि का प्रभाव था । उन्होंने मुझे अपने हाथ से बनाए कुछ चित्र देते हुए कहा-"ये मैंने तुम्हारे लिए ही बनाए हैं-बड़े यत्न से ।" चित्र मैंने ले लिए किन्तु धन्यवाद कैसे दूँ ? सोच ही रही थी कि बुआ जी बोल उठीं--"बिटिया ! अरूप को वह हलुआ और खीर तो खिला जो तूने आज बड़े जतन से बनाई है ।"

मैंने झट से चित्र बुआ जी को पकड़ा दिए और स्वयं रसोई-घर की ओर बढ़ गई । मिष्टान्न ग्रहण करते हुए अरूप जी बड़े ही प्रसन्न दिखाई पड़े !

"बुआ जी ! खीर और हलुआ तो अनगिनत बार खाया, मगर ऐसा कभी नहीं । मन करता है कि खाता ही रहूँ, कहने के पश्चात् उन्होंने मेरी ओर देखा । उस दृष्टि में जो निर्मल, स्निग्ध लालसा-रंजित, सजी-धजी आकांक्षा थी-वह मेरे हृदयाकाश पर विद्युत की भाँति कौंध गई । निमिषमात्र का वह तीव्रालोक ! मेरे जीवन की एक रहस्यमयी पहेली !"

"भइया और ले लो,"-बुआ जी ने साग्रह कहा ।

"आज इतना बहुत है, अब फिर कभी और"-कह कर उन्होंने खाली प्लेट में कटोरी रखकर मेरे सामने कर दी । यह व्यापार उनकी प्रकृति और आचरण के सर्वथा प्रतिकूल था । अतः मैं चौकी--किन्तु अनायास ही मैंने वह तश्तरी उनके हाथ से ले ली और अनमने भाव से रसोई में जाकर उसे जूठे बर्तनों में रख दिया । पर वे पात्र क्या सच ही जूठे थे ?

मैंने कुछ भी नहीं समझा--मेरी मूढ़ता ने मुझे कुछ भी तो नहीं समझने दिया । नहीं समझी-इसमें आश्चर्य ही क्या ? राजा बलि में क्या बुद्धि की, ज्ञान की कमी थी ? पर क्या वे "वामन" की सच्चाई को समझ पाए थे ? यदि इस प्रतीक को मैं नहीं समझी तो क्या आश्चर्य !

अरूप जी के चले जाने पर मैंने वे चित्र देखे । छोटे-छोटे, कला को उजागर करने वाले आकर्षक चित्र देखते हुए मैं चौंक गई-एक चित्र में मेरी छबि अंकित की गई थी । उस अंकित छबि को देख कर मैं पुलकित हो उठी ! जानती नहीं किस प्रकार की भावना से प्रेरित होकर वह चित्र मैंने अपने ट्रंक में छिपा कर रख दिया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके बाद अरूप जी से मेरा मिलना बहुत समय तक नहीं हुआ । पता नहीं कौन आया, कब आया, और क्या कहा कि एक दिन फूफा जी ने घर में बताया कि अरूप के लिए उसके घर वाले हमारी बिटिया माँग रहे हैं ।

इस चर्चा ने घर भर को चौंका दिया । कान्यकुब्ज–समाज में उस समय यह एक अनहोनी सी घटना थी । फूफा जी ने दोपहर का भोजन करते समय स्वयं अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा–"मुझे तो लड़का पसंद है । पढ़ा–लिखा है, काम से लग गया है, साधारण काम में नहीं । एक बड़ी फर्म में उसकी नियुक्ति हो गई है ।"

उस समय बड़ी बुआ जी, जो मेरी सगी बुआ जी की सौभाग्यहीना जिठनी थीं, और पूरी घर–गृहस्थी की बागडोर अपने हाथों में सँभाले थीं, फूफा जी के पास बैठी पंखा डुला रही थीं । घर में कच्चा खाना चौके में ही खाने की व्यवस्था थी । फूफा जी के भोजन के समय बड़ी बुआ जी उनके समीप बैठ नित्य ही बिना किसी व्यक्तिक्रम के उनकी थाली पर अति मन्द गति से ताड़ का छोटा सा पंखा डुलाया करतीं और उसी समय घर–गृहस्थी में उठने वाली समस्याओं पर उनके साथ विचार–विमर्श कर लेतीं ।

अरूप जी के सम्बन्ध में फूफा जी का विचार जान कर बड़ी बुआ जी बोल उठीं–"लाला ! क्या तुम्हारी पसन्द से ही ब्याह रचा दिया जाएगा ? मैं बिटिया का मन लूँगी, तब तुम्हें बताऊँगी ।"

"ठीक है, बिटिया का मन जान लेना । पर अभी उसकी समझ ही क्या है ! तुम क्या सोचती हो ? घर बैठे इतना योग्य पात्र मिल रहा है । तुम अपनी राय बताओ न !"–कहने के साथ ही फूफा जी की प्रश्न करती दृष्टि बड़ी बुआ जी की ओर उठ गई ।

"मेरी राय ? मैं क्या कहूँ ? लड़का है तो बहुत अच्छा, बड़ा गुरु–गम्भीर और गुनी, पर अपनी बिटिया से काफी बड़ा लगता है । बिटिया तो अब सोलह की पूरी हुई है, मगर अरूप वह तो पच्चीस से कम का नहीं लगता । हमारी बिटिया तो स्वर्ण–फूल है । जोड़ी कुछ बैठती नहीं । रूप भी तो देखना चाहिए—"

कह कर बुआ जी मौन हो रहीं । फूफा जी कभी उनसे प्रतिवाद नहीं करते थे–उस दिन भी नहीं कर सके ।

और सच ही जोड़ी बैठी नहीं–रूप ही देखा गया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बड़ी बुआ जी अपने पति की द्वितीय पत्नी थीं । अतः मेरी बुआ जी और यह लगभग समवयस्का थीं । किन्तु मेरे फूफा जी ने अपनी आयु से भी कम आयु वाली अपनी इन भाभी को जो आदर और सम्मानित प्यार दिया, वह माता और पुत्र में ही सम्भव था । उन्हें इन्हीं में अपनी दिवंगता माता के दर्शन हुए थे । मेरी बुआ जी ने भी पति की इस पावन भावना को सिर-आँखों पर स्थान दिया था ।

बड़ी बुआ जी का व्यक्तित्व असाधारण था । मधुर, सर्वप्रिय-अनुशासन की स्थापना उनकी सर्वाधिक प्रशंसनीय उपलब्धि थी ।

अपने पति के चिरवियोग को वे झेल तो ले गयीं थीं, किन्तु पति के प्रति समर्पिता का उमड़ता प्यार निकास ढूँढ़ता रहा । मर्यादा के रंध्रों से रिस-रिस कर वह देवर-देवरानी आदि को सिक्त करता रहा, उमड़ते प्यार में बाढ़ नहीं आ पाई । किन्तु मुझे देखते ही उस प्यार में एक ऐसी ऊँची लहर उठी कि वह मुझे ही अपने में समेट ले गई । उनके प्यार के प्रवाह में मैं आनन्द पाती रही-हँसती रही, खेलती रही, और विकसित होने के साथ ही उनके साहचर्य में मेरा तन-मन निर्मल से निर्मलतर होता गया ।

बड़ी बुआ जी के प्यार और ममता की वर्षा मुझ पर निरन्तर होती रही । आयु में अत्यधिक असमानता होने पर भी वात्सल्य और अनुरागोन्मुखी भक्ति के सम्मिलन से वे मेरी अन्तरंग सखी सी बन गयीं, ऐसी सखी, जिसकी स्नेह-वर्षा से अनवरत स्वच्छ होता मेरा अन्तर और बाह्य-रूप निखर कर इतना अभिराम हो उठा कि वे स्वयं ही मेरे रूप पर रीझने लगीं । जीवन के तत्कालीन अनुभव ने मेरे सामने मनोविज्ञान का एक अनपढ़ा पृष्ठ खोल दिया । उमड़-उमड़ कर मन को डुबा देने वाला प्रेम, आयु की समानता, असमानता पर ध्यान नहीं देता । उस प्यार के मूल में तो किसी का अच्छा लग जाना है-यह अच्छा लगना अकारण नहीं होता । प्रिय व्यक्ति की असाधारण विशेषता, रूप गुण आदि हमारा ध्यान उसकी ओर आकर्षित करते हैं । आकर्षण प्रशंसा को जन्म देता है । इस व्यापार के मध्य श्रद्धा या करुणा का भाव भी कभी-कभी जागता है । बस । यही सब मिल-जुल कर प्यार का रूप सँवार देते हैं ।

अब मुख्य बात पर आऊँ-मेरे विवाह के सम्बन्ध में फूफा जी से बात होने के दूसरे ही दिन दोपहर में बड़ी बुआ जी मन्द-मन्द मुस्कराती मेरे कमरे में आयीं । मेरे पास ही पलँग पर बैठती हुई, बिना किसी भूमिका के बोलीं-"बिटिया ! तेरी शादी अरूप से कर दूँ ? कैसा लगता है अरूप तुझे ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने विषय की गम्भीरता को तनिक भी नहीं समझा । नासमझी, विनोदप्रियता, अल्हड़पन–इन्हीं सब ने सोचने नहीं दिया–झट से कहला दिया–

"अरूप जी ? वे तो एकदम ऊँट जैसे लगते हैं ।"

यदि मैंने "हाँ" या "ना" में उत्तर दिया होता तो बुआ जी बात कुछ आगे बढ़ा सकती थीं–पर शायद मेरे उत्तर ने कुछ भी गुंजाइश नहीं छोड़ी थी—यह बात मैं समझी ही कब थी !

मेरा विचार सुनकर बुआ जी कुछ भ्रमित, चकित, मौन हो रहीं । तुरन्त ही विषयान्तर कर मेरी पढ़ाई के विषय में पूछ–ताछ करने लगीं ।

इसके बाद अरूप जी के बारे में मुझसे किसी ने भी कुछ नहीं पूछा । मेरा अवचेतन मन इच्छुक था कि कोई मुझसे फिर कुछ पूछे । पर वह अवसर आने के प्रवेश–द्वार पर तो मैं स्वयं ही अर्गला लगा चुकी थी ।

बात आई–गई हो गई ।

बहुत दिनों बाद पता चला कि वह प्रस्ताव बड़े ढंग से अस्वीकृत हो गया था । फूफा जी ने घर में इतना ही कहा था कि जब बिटिया को ही लड़का ऊँट जैसा लगता है तो सम्बन्ध न करने में ही बुद्धिमानी है ।

सच बताऊँ ? इस घटना से मुझे न तो सुख मिला और न दुःख । एक विचित्र सी मनःस्थिति अवश्य कुछ दिन मुझे घेरे रही । उसके पश्चात् सब सामान्य । हवा के एक आकस्मिक झोंके के समान अरूप जी का प्रसंग आया और चला गया ।

उस समय मेरा मन पता नहीं किन–किन स्वप्न–लोकों में उड़ता फिरता था । कल्पना नीड़ में सेई जा रही थी । इसलिए मैं यह कल्पना ही नहीं कर पाई कि मेरे घर से जो अस्वीकृति, जिसमें नहीं निहित थी, भेजी गई, उसने किसी के स्वर्णाकांक्षाओं से भरे अन्तस् को चूर–चूर कर दिया होगा । यह सोच ही नहीं सकी कि भागीरथी के अथाह जल में बड़वाग्नि प्रज्ज्वलित हो उसके मर्म को दग्ध करने लगी होगी । एक छोटी सी "नहीं" के भूकम्प से जिसके आशा और विश्वास का प्रासाद ढह पड़ा होगा, उसने अपनी रक्षा कैसे, और कहाँ जाकर की होगी ! इतना ही नहीं, अपने घर–परिवार की दृष्टि में सर्वोच्च सोपान पर पहुँचा व्यक्ति, "नहीं" के आकस्मिक धक्के से चक्कर खाकर क्या निम्नतम सोपान के भी नीचे नहीं जा गिरा होगा !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय तो नहीं–पर आज वह सब मेरी जागरूक कल्पना में आ गया है ।

आँधी और तूफान विश्वव्यापी होकर नहीं आते--पर जहाँ कहीं वे उठते हैं वहाँ का बहुत कुछ नष्ट–भ्रष्ट कर जाते हैं । सोचती हूँ–उस समय कैसी विकट आँधी, कैसा भीषण तूफान, अरूप जी के सिर पर से गुजरा होगा । उनका क्या–क्या नष्ट कर गया होगा ! क्या–क्या उड़ा कर ले गया होगा !

उन दिनों कोई भी बात मेरे मन में देर तक टिकती ही कहाँ थी ! मैं सखी–सहेलियों में रमी रही और अरूप जी की कथा विस्मृति के आवरण में जा छिपी ।

ग्रीष्मावकाश होने पर मैं ननिहाल में बुला ली गई । इन महीनों में सदा ही विवाहों की धूम मची रहती है । अतः छुट्टियों में कितने ही विवाहों, बारातों, प्रीतिभोजों आदि का आनन्द मुझे भरपूर प्राप्त होता था । झीने अवगुण्ठन में झिलमिलाते, दप–दप दमकती पूर्ण चन्द्राकार नथ से सुसज्जित, नव–वधू के मुख की सलोनी, छुई–मुई सी मुखमुद्रा देखने का लोभ मुझे सदा ही रहता था । कभी "सुहागगीत" का बुलउआ, कभी "घोड़ी" का बुलउआ, कभी लड़की की विदा का बुलउआ, और सर्वाधिक बहू की मुँह–दिखाई के बुलउए आते ही रहते । अपनी नानी के साथ मैं बहू की मुँह दिखाई में जरूर ही जाती ।

उस बार कुछ अधिक ही विवाहों का आनन्द लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । एक दिन जब नाउन "मुँह–दिखाई" का बुलउआ देने आई तो नानी से बोली कि बड़ी बहू ने कहा है कि आप अपनी नातिन लली को जरूर साथ लाएँ ।

मैं तो ऐसे भी नव–वधू को देखने जाती, पर नाउन की बात सुनकर मेरा कौतूहल चरमसीमा पर पहुँच गया । बुलउए में नानी मुझे अपने साथ ले गयीं । आँगन में स्त्रियों और बच्चों की बेहद भीड़ थी । ढोलक–मजीरे पर मंगलगान गाती हुई स्त्रियों की स्वर–लहरी वायु–मण्डल को रससिक्त कर रही थी । नव–वधू दीवार के पास ही गाव–तकिए के सहारे बैठी थी । झीने अवगुण्ठन से वधू के गौरवर्ण मुख की असाधारण रूप से लम्बी बरौनियाँ देखते ही मेरे मन में मुख–दर्शन की लालसा तीव्रतम हो उठी । तभी मेरी नानी, बहू की मुँह–दिखाई करते हुए मुझसे बोलीं–"आ लली ! तू भी मुँह देख ले ।"

मैं तो इस सुअवसर की ताक में थी ही । झट से पास बैठे बच्चों के बीच से रास्ता बनाती हुई मैं वधू के पास पहुँच गई । अवगुण्ठन मैंने उठाया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं--कभी नहीं उठाती थी, क्योंकि ऐसा किए जाने पर बहुयें आँखें बन्द कर लेती थीं । मुख-दर्शन-आनन्द अधूरा रह जाता था । मैंने झुक कर घूँघट में झाँका । वधू के खुले नेत्रों में पता नहीं क्या था कि मैं उन्हीं में कुछ निमिष तक खो गई । पूरा मुख ठीक से देख भी नहीं पाई थी कि एक दूसरी जनी मुँह-दिखाई करने आ पहुँची । शील का तकाजा था । मैं मन मारकर एक ओर हट गई--सोचा कि बाद में भीड़ कम पड़ने पर फिर अच्छी तरह बहू का मुँह देखूँगी--तभी मुझे ध्यान आ गया बड़ी बहू का--

"वे बड़ी बहू कौन हैं ? मुझे क्यों बुलाया है ?" सोचते हुए मेरी निगाह पूरे आँगन पर तैर गई-छोटी-बड़ी, ढेरों बहुएँ—पर सबका मुख घूँघट में छिपा । "बड़ी बहू के बारे में किससे पूछूं ? कैसे पूछूँ ?" सोचती तो रही, पर किसी से भी पूछ नहीं पाई । चुप रह गई ।

गाना-बजाना बन्द होते ही उस घर की प्रबन्धकर्त्री स्त्री द्वारा वितरित किए जाने वाले बड़े-बड़े चार-चार बताशे आँचल में लेती हुई स्त्रियाँ अपने-अपने घर लौटने लगीं । किन्तु मेरी नानी उठकर उसी घर के एक दूसरे कमरे में चली गयीं । मैंने भी उनका अनुगमन किया । उस कमरे में प्रकाश पर्याप्त नहीं था, एक पलंग पर कोई श्वेत-केशी दुर्बलकाय स्त्री लेटी थी जिसका मुख धूमिल प्रकाश के कारण स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ रहा था । नानी ने, उन्हीं के पास पलंग पर बैठते हुए कहा-"राम-राम भौजी । कैसा जी है ?"

"या सभै तौ सब ठीकै है--अब मोय कोई चिन्ता फिकर नाय रही । अप्पू को ब्याह हो गयो-बस । तुमने बहू देखी बीबी जी ?" वे कह उठीं ।

"देखी, लक्ष्मी सी लगी । अब तुम्हारी सेवा भी करे तो यह रूप सार्थक जानो"--

नानी इतना ही कह पाई थीं कि उस कमरे में एक अर्द्धावगुंठनवती बहू ने आकर उनके पैर छुए ।

"दूधों नहाओ, पूतों फलो" आशीर्वाद पाकर उस बहू ने मेरे कंधे पर धीमे से हाथ रखते हुए, फुसफुसा कर मेरे कान में कहा-"बीबी जी ! मेरे साथ आओ ।"

मुझे तो जैसे साँप सूंघ गया ।

"अरे ! यह तो अरूप जी की भाभी हैं ! मैं किसकी बहू देखने आई हूँ ?" सोचती हुई मैं उनके साथ चली गयी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाभी का अनुगमन करती हुई मैं उन्हीं के कमरे में पहुँच गई । उन्होंने साग्रह मुझे अपने पलंग पर बैठाते हुए कहा--

"मैं बड़ी जल्दी में हूँ । अरूप ने ही अपनी बहू से तुम्हारी भेंट कराने के लिए तुम्हें बुला लेने को मुझसे कहा था । बुआ जी पहले भी आयीं थीं–बारात जाने के दिन—उन्हीं से पता चल गया था कि आजकल तुम भी आई हुई हो"

भाभी जी मुझे यह सब बता ही रहीं थीं कि मेरे पीछे आकर खड़े हो गये अरूप जी ने मुझसे कहा--

"तुम बड़े मौके से आ गईं, चलो तुम्हें बहू दिखाऊँ ।"

"बीबीजी ! तुम इनके साथ बहू के पास चलो । मैं अभी आई"–कहते हुए भाभी कमरे से बाहर निकल गयीं ।

एकान्त कक्ष ! सामने अरूप जी ! जीवन का वह क्षण मेरे लिए युगों से भी अधिक लम्बा हो गया । कुछ भी हो पर वह बीत गया–"आओ–आओ कह कर मेरा मार्ग–दर्शन करते अरूप जी ऊपर की मंजिल में पहुँचाने वाली सीढ़ियों की ओर बढ़ गये ।

अचानक ही इस प्रकार अरूप जी से साक्षात्कार हो जाने से मैं विमूढ़ा सी हो उठी । उस समय कुछ भी सोचने–समझने की शक्ति मुझमें शेष नहीं रह गई–मेरे साथ–साथ सीढ़ियाँ चढ़ते हुए अपने स्वर को यथासम्भव मन्द रखते हुए अरूप जी कहने लगे--

"जानती हो ? तुमसे शादी कर पाने के सौभाग्य से तो मैं वंचित रह गया, किन्तु तुम्हारे ही नाम से मेरा गठबन्धन अवश्य हो गया । उसे कोई भी नहीं रोक सका । तुम भी नहीं । मैं हैरान रह गया यह जान कर कि मेरे साथ सप्तपदी करने वाली का नाम भी वही है जो तुम्हारा है । मनुष्य कितना मूर्ख है ! सुन कर ऐसा खुश हुआ जैसे तुम ही मिल गई हो, मन प्रसन्नता से और तन पुलक से भर गया । दार्शनिकता में रमते हुए मेरे चित्त ने कहा–तुम पूर्णकाम हो, रूप–भेद कुछ भी महत्त्व नहीं रखता । महत्त्व है नाम का । नाम भेद तो है नहीं । और रह गया वह रूप, सो वह अक्षय है नहीं । अक्षय है नाम । इसलिए नाम ही सार–वस्तु है–वही तुम्हारे जीवन का सम्बल है"--

सीढ़ियाँ समाप्त हो गयीं, अरूप जी रुक गये--

"बस, एक मिनट के लिए मेरे पास रुक जाओ"–कहने के साथ ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे चुप हो गये । मैं उनके स्वर से समझ गई कि वह भीग कर भारी हो कण्ठ में ही रुक गया है और भावों को वाणी का रूप नहीं दे पा रहा है । गजब का आत्मनियन्त्रण था अरूप जी में । पुनः कहने लगे–"इसी दार्शनिक विचारधारा में बहते हुए मैं इस टूटे हुए हृदय को चूर–चूर होकर धूल में मिलने से बचा सकूँगा ।"

वाक्य के उत्तरांश की ध्वनि से स्पष्ट पता चला कि उनके शब्द आँसुओं में डूब कर बाहर आ रहे थे--

बस, इतना कहने के बाद ही वे तीव्रगति से आगे बढ़ गये । पर मेरे पैर जड़ हो रहे किसी भी तरह तुरन्त ही मैं उनके पीछे नहीं जा पाई । वहीं खड़े रह कर मैंने अपने को दृढ़ किया और तब मैं अरूप जी की दिशा में आगे बढ़ गई ।

वे बहू के कमरे के द्वार पर खड़े थे । अवश्य, मेरे आने की प्रतीक्षा में थे ।

मुझे देखते ही बोले–"आओ, यह तुमसे मिलने को अधीर हो रही थीं—पहले मैंने सोचा था कि इन्हें लखनऊ ले जाकर तुम्हारा मिलन करा दूँगा—पर विधि का विधान तो देखो । तुम स्वयं ही आ पहुँची । मान गया इनकी लगन को ।"

उनका संकेत अपनी नवपरिणीता के प्रति था । सुनकर पता नहीं कैसे मेरी दृष्टि अरूप जी के मुख पर जा टिकी--

"अरे ! यह कैसा मुख है ! वेदना से दग्ध !"

सोचते ही मेरी दृष्टि धरती पर आ गई और मन कचोट उठा ।

"अच्छा ! अब मैं चलूँ ?" बहुत सम्भव है अब मेरी और तुम्हारी भेंट न हो ।"

कह कर उत्तर की अपेक्षा किए बिना ही अरूप जी नीचे चले गये । उनके चले जाने पर मैं निःशब्द आकर बहू के पास बैठ गयी ।

नव–वधू का घूँघट उठा कर, उसकी मुख–छवि जी भर कर देख लेने का उत्साह सो गया था और लालसा एक नए प्रकार के भय और अवसाद में डूब गई थी । सम्भवतः मुझे निष्क्रिय जान कर ही बहू ने अपना घूँघट स्वयं अपने हाथों खोल लिया । मैं मौन बैठी धरती की ही ओर देखे जा रही थी कि तभी बहू ने मेरी हथेली अपनी मुट्ठी में ले ली--

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"किस सोच में पड़ गयी हो बीबी जी ?"

उस अप्रत्याशित स्पर्श और प्रश्न से मैं चौंक पड़ी–मेरी आँखें ऊपर उठीं और बहू के लावण्यमण्डित मुख पर स्थिर हो रहीं । कैसी आभा फूटी पड़ रही थी उस अपरिचित मुख से ! पल भर के लिए मुझे देश–काल का ज्ञान ही न रहा । ज्ञान आने पर मैंने अनुभव किया कि मेरा बायाँ हाथ एक कोमल हिमशीतल कर–पल्लव से जकड़ा हुआ है । वह अस्वाभाविक शीतलता मेरे मन में भय की लहर उठा गयी । शायद वह भय, मेरे मुख पर प्रतिबिम्बित हो उठा था । एक सलज्ज मुसकान, उस अभिनव कमनीय मुख पर उतर आई ।

"बीबी जी ! आपको देखकर ही मैं समझ गयी कि आपका मन बहुत कच्चा है । जरा सी बात से मुरझा जाता है, भयभीत हो उठता है, है न यह बात ?"

बहू के प्रश्न का उत्तर मैं दे भी नहीं पाई थी कि वही पुन: कह उठी—

"आपको बिना देखे ही मैं आपसे मिलने के लिए उत्सुक हो उठी थी, और आप मुझे देखने के बाद भी प्रसन्नता नहीं जता रही हैं । कुछ कह भी नहीं रही हैं,–अच्छा, एक इच्छा है मेरी । मैं आपको अपनी सखी बनाना चाहती हूँ । बनेंगी आप मेरी सखी ? मेरा मन तो नहीं तोड़ देंगी ?"

सुनते ही मेरे सर्वांग में सिहरन दौड़ गयी । मैं स्वप्न तक में कल्पना नहीं कर सकती थी कि एक नई बहू इतने थोड़े से क्षणों की भेंट में इतनी मुखर हो उठेगी ।

"क्या कहूँ ? क्या न कहूँ ?" सोच ही रही थी कि बहू हँस पड़ी ।

"अरे, बीबी जी ! आप घबड़ा रही हैं । घबड़ाने के लिए तो यहाँ कुछ भी नहीं है । मेरी बात का जवाब दीजिए न ? बनेंगी आप मेरी सखी ?"

बहू के खुलेपन से, सरलता से, मैंने शक्ति पाई । मुझे भी हँसी आ गयी—

"सखी कैसे बना जाता है ? बताइए, मैं जरूर बन जाऊँगी ।"

सुनकर बहू मौन रह कर कुछ सोचने लगी । मेरा हाथ अभी भी उसकी हथेली के बन्धन में था । किन्तु अब वह हथेली उष्ण हो आई थी । उसके हाथ की पकड़ कुछ ढीली पड़ते ही मैंने अपने हाथ को मुक्त करते हुए स्वयं अपने हाथ में उसका हाथ लेते हुए विनोद–भाव से कहा--

"आप चिन्ता में मत पड़िए–मैं आपकी सखी बन गयी ।"

"चिन्ता नहीं कर रही थी–सोच रही थी कि सच ही सखी कैसे बना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है ? खोजने पर भी कोई उत्तर नहीं मिल रहा था । पर अब कुछ नहीं सोचूँगी । मन का भार उतर गया । आप मुझे एक अनोखी सखी के रूप में अनायास मिल गयी हैं । इसी ख़ुशी में मुँह मीठा करा रही हूँ–कहते हुए उसने पास ही रखी तश्तरी से मिठाई का एक टुकड़ा उठाकर अपने हाथ से मेरे मुँह में दे दिया ।

मेरा मन हलका हो आया । मैंने भी मिठाई का एक टुकड़ा उठा कर उसे अपने हाथ से खिलाया और दुबारा एक छोटा सा लड्डू उसके मुँह में जबर्दस्ती देते हुएं हँस कर कहा--

"यह दुबारा की मिठाई क़िसी और बात के लिए है ।"

"मैं समझ गई किस बात के लिए है । सखी हूँ, तुम्हारे मन की बात कैसे नहीं समझूँगी ! कहते हुए अर्थ–भरी मुस्कान उसके सारे मुख–लावण्य को और भी अधिक चमका गयी ।

यह प्रेमवार्ता वहीं रुक गई । भाभी आ गई थीं, बोलीं--"बीबी जी ! बुआ जी ! बुला रही हैं ।"

भाभी के आने की आहट पाते ही बहू का मुख अवगुण्ठन में छिप गया था । मेरे उठते समय उसने भाभी की आँख बचा कर मेरी कलाई अपनी मुट्ठी में लेकर दबाई और तुरन्त ही मुक्त भी कर दी ।

स्पर्श की सांकेतिक, अनबूझी भाषा की मूक ध्वनि प्रथम बार मेरे हृदय ने सुनी ।

उस रात मुझे एक सर्वथा नयी अनुभूति हुई । अनिद्रा या विनिद्रा मुझे कभी नहीं झेलनी पड़ती थी । उस दिन झेलनी पड़ गयी । सोने के उद्देश्य से जब–जब मैं आँखें मूँदती, अरूप जी का व्यथित, मुरझाया हुआ मुख और बहू का मनोरम मुख, युगपद सामने आ जाते । मेरी आँखें पट से खुल जातीं । खिन्न चित्त कहने लगता--"यह देव का कैसा प्रकोप ? जिस व्यक्ति के जीवन–कोष में अनायास अतुल ऐश्वर्य भर गया है, वही व्यक्ति उसी कोष के द्वार पर एक नितान्त अकिंचन, लुटे हुए व्यक्ति की भाँति मुँह सुखाए खड़ा है !"

और भी पता नहीं क्या–क्या बातें मेरा चित्त कहता रहा ! कहाँ तक बोलता ! चुप हो रहा । नींद भी कब तक न आती । कब तक भटकती । वह भी आ गयी । उपर्युक्त घटना के ठीक एक सप्ताह बाद ही अरूप जी के घर से पुनः बुलावा आया--साथ में संदेश भी–"नयी बहू ने नातिन लली को बुलाया है ।" सखी की पुकार को अनसुना कैसे करती ! मन में भय छिपाए हुए कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहीं अरूप जी से पुन: मेरी भेंट न हो जाए मैं नानी जी के साथ चली गयी ।

अबकी बार नानी जी सीधे अरूप जी की मां के पास ही गयीं । वहाँ पहुँचने पर बातों ही बातों में पता चला कि अरूप जी तो एक दिन पहले ही अपने कार्य पर चले गये । सुनते ही मेरी तीव्र धड़कन सामान्य हो आई । यह भी सुनने में आया कि बहू के मायके से ''चौथी'' आयी है, और कल ही उसकी विदाई भी है । इसी सब के लिए अरूप जी की अम्माँ ने मेरी नानी जी को बुलवा भेजा था ।

''नई बहू और नातिन लली में एक ही दिन में बहनापा हो गया, सो बहू उससे मिलने के लिए अधीर हो रही है । नई बहू अपने मां-बाप से पहली बार अलग रही है, सो उसका मन बहलाने के सारे ही उपाय तो किए जा रहे हैं ।'' इसी प्रकार की चर्चा नाउन ने बुलावा देते समय की थी ।

नानी ने अरूप जी की अम्मां के पास बैठते हुए कहा-''लली ! जा न, अपनी बहनेली के पास !''

मुझे और क्या चाहिए था !

वहाँ से चलते समय मेरी निगाह अनायास ही उन अम्मां जी के मुख पर चली गयी, जिन्होंने एक दिन मेरे पैर धोए थे, फूलमाला पहनाई थी, और माथे पर रोली का टीका लगाया था । वे भी अपनी गढ़े में धँस गयी आँखों से मुझे ही देख रही थीं--आश्चर्य हुआ यह देख कर कि उन आँखों में मेरे प्रति न तो रोष की झलक थी, न असन्तोष की, और न उपेक्षा की ही । वे अपने सरल नेत्रों से मूक भाषा में कह रही थीं-''जा, जा न ! वह तेरे इन्तजार में है, तेरी ही बाट जोह रही है ।''

मातृत्व के गौरव से दीप्त मूर्तिमती गरिमा ही जैसे मुझे देख रही थी-मन ही मन भक्ति और श्रद्धा के फूल उस दृष्टि पर अर्पित करते हुए मैं बहू के पास चली गयी । हाथ में मिठाई से भरा कटोरा लिए भाभी भी मेरे साथ गयीं ।

उस दिन सखी घूँघट नहीं किए थी । केवल आँचल माथे के अर्द्धभाग को आवृत किए था । दिन के प्रकाश में मैंने उसका मुख ध्यान से देखा । नि:सन्देह उसका रूप असाधारण था । कान्तिमान् मुख से लावण्य फूटा पड़ता था । ''आश्चर्य है !''-मेरा मन कह उठा ।

''जैसे ही मैं बहू के पार्श्व में बैठी कि उसने धरती पर टिकी मेरी हथेली कुछ इस प्रकार अपने डुपट्टे के अन्दर कर ली कि मैं यही समझी कि बहू के अनजान में ही डुपट्टे का वह छोर मेरे हाथ पर आ गिरा है । किन्तु ऐसा था

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं, क्योंकि उसने मेरी उँगलियों को अपने हाथ से बड़ी ही कोमलता से एक बार दबाया और फिर अपनी स्निग्ध उँगलियाँ मेरे हाथ पर रख लीं ।

भाभी का ध्यान इधर नहीं था । उपहार के कुछ पैकेट हाथों में उठाए–"बीबी जी ! अपनी सहेली का मन बहलाओ न ! आज सबेरे से यह रो रही है ।" इसे समझाओ--मुझसे कहती हुई वे चली गयीं ।

उनके जाते ही बहू बोल उठी–"सखी ! कितना इन्तजार कराया तुमने ? सुना है कि तुम कविता कर लेती हो, काव्य–रचना करने वाले तो बड़े भावुक, बड़े संवेदनशील होते हैं--जड़ पदार्थों तक की भाषा समझते हैं--किन्तु तुम तो लगता है चेतन तक की भाषा नहीं समझ पातीं । किस धातु की बनी हो ?'

सुनकर मैं आश्चर्य से बहू के स्मितिदीप्त मुख को देखने लगी । "ऐसे क्या देख रही हो ? जबाब दो ! मेरे प्यार का आदर क्यों नहीं किया ?"

बहू के उपालम्भ का कारण मैं समझ नहीं पाई ।

"किस का आदर नहीं किया ?" मैंने अपने डुपट्टे के आँचल में तुम्हारा हाथ दबाया, तुम पर कुछ असर नहीं, फिर मैं बड़े प्यार से तुम्हारा हाथ सहलाती रही । पर तुम तो पत्थर सी बनी रहीं, मेरा प्यार बहता रहा, पर तुम नहीं बही । लगता है तुम इस मिट्टी की ही नहीं बनी हो ! हाय राम ! ब्याह के बाद क्या करोगी ? ऐसे ही पत्थर बनी रहोगी ? अभी से बताए देती हूँ--ऐसे काम नहीं चलने का ।

किसी भी नई बहू में ऐसी मुखरता मैंने कभी नहीं पाई थी । मैंने भी विनोद किया--"कैसे काम चलेगा ? चलो, अभी से सिखाना शुरू कर दो ।"

उसने झट से कहा–"सिखाना ही पड़ेगा । सुनो, मैंने तुम्हारा हाथ दबाया था--दबाकर बताया कि स्वागत है, सखी ! स्वागत ! फिर तुम्हारा हाथ सहलाती रही--बताती रही कि मन में बड़ा प्यार उमड़ा है, कैसे व्यक्त करूँ ? भाभी जी सामने खड़ी हैं । तुम सच ही नहीं समझीं ? कुछ भी नहीं समझीं ?"

मैं क्या उत्तर देती ! अज्ञता की लज्जा मेरे मुख पर उतर आई ।

मुझे चुप देख कर वही पुनः बोली--

"कोई बात नहीं अब समझ जाया करोगी, उसने पास ही रखे पर्स से एक पत्र निकाल कर खोला और मेरे सामने कर दिया ।

"इसे पढ़ो सखी । यह मेरे सबसे छोटे भाई की चिट्ठी है । नौ साल का है । रात को मेरे ही पास चिपक कर सोता था । रो–रो कर चिट्ठी लिख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भेजी है, बोलो मैं रोती नहीं तो और क्या करती ! कल शाम की डाक से आई, मगर मुझे आज सबेरे मिली । कल मैं जाऊँगी । परसों घर पहुँचूंगी । मेरा भइया मुझे लेने स्टेशन आयेगा । मुझे देखते ही मुझसे चिपट कर रो पड़ेगा ।''

बहू के मायके लौटने पर भाई रोया या नहीं, मैं नहीं जानती, पर बहू उस पत्र को हाथ में लिए फूट-फूट कर रोने लगी ।

इस आकस्मिक रुदन से घबड़ा कर मैंने कमरा अन्दर से बन्द कर लिया । बहू का सिर अपनी गोद में रख उसे चुप कराने का प्रयत्न करने लगी । उसके आँसू मैं अपने रूमाल से सुखाने लगी, पर वे कहाँ सूख पाते ! धारा को सुखाना कहाँ सम्भव था ?

पता नहीं कौन सा बाँध, अचानक ही टूट गया था । थोड़ी ही देर में बहू स्वतः शान्त हो गयी । भय, आशंका और लज्जा के भाव उसके मुख पर अंकित हो उठे । झट से उठ तुरन्त ही मुँह धो, माथे पर बिन्दी लगा, वह मेरे पास खड़ी हो बोली--

''सखी ! दु:खी मत होना । अपने को रोक नहीं पाई । मैं सच शर्मिन्दा हूँ । तुम क्या सोचती होगी ! दरवाजे को बन्द ही रहने दो । अभी दो-तीन घण्टे इधर कोई नहीं आएगा । तुम पास हो न ! इसलिए भाभी भी निश्चिन्त होंगी । चलो, दोनों जने पलंग पर लेटकर बातें करेंगे ।'' कह कर बहू ने मुझे हाथ पकड़ कर ऐसे उठा दिया जैसे कुछ हुआ ही न हो ।

उसका आग्रह टालने का प्रश्न ही नहीं था । मेरे लेटते ही वह भी लेट गई । मेरी ओर करवट लेते हुए उसने कहा-''कल मैं चली जाऊँगी । इस समय जी भर कर तुमसे बातें करूँगी । फिर पता नहीं कब भेंट हो ।''

मेरी कमर में अपनी बाँह डाले वह एकटक मेरा मुँह देखने लगी, देखती गई । मुझे कुछ अटपटा सा लगा । पूछ बैठी-''ऐसे क्या देखे जा रही हो ?''

उत्तर में वह बोली कुछ नहीं, हँस दी ।

मैंने उसकी आँखों पर हाथ रख दिया ।

बहू ने झट से मेरा हाथ हटा दिया ।

''जो अभी तक नहीं देख पाई, वही देख रही हूँ । तुमने मेरी आँखें क्यों बन्द कर दीं ? अच्छा, सुनो तुम्हारा और मेरा नाम एक ही है । मेरी इच्छा है कि हम दोनों परस्पर एक दूसरे को सदा ''सखी'' ही कहकर पुकारा करें, हमारे जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ है, हमारे व्यवहार में भी कुछ नवीनता रहे तो अच्छा । ठीक है न ?''

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"ठीक है"–मैंने कह दिया ।

वह कुछ सोचने लगी । मुझे भी अवसर मिला । मन में अचरज जागा—"अचानक कैसे बरसात होने लगी और थोड़ी ही देर बाद पुनः धूप फैल गयी । नई बहू होते हुए भी कितनी बातें करती है ! कुछ भी हो, इसके रूप और स्वभाव दोनों ही मधुर हैं ।"

कुछ ही क्षणों के उपरान्त ऐसा लगा जैसे हमारा अनन्तकाल का परिचय हो और हमारी भेंट वर्षों बाद हुई हो । उसने इतनी सारी बातें बतायीं कि बस मैं सुनती ही रह गयी, ऐसी सखी के सामने मेरे अन्तःकरण के कपाट भी कुछ–कुछ खुलने लगे । दो घण्टे से अधिक हम दोनों उसी प्रकार लेटी हुई बातें करती रहीं । प्रत्येक पल हम दोनों को एक दूसरे के निकट से निकटतर लाता गया । कितनी बातें ! कितने रहस्य ! सुनते–सुनते मुझे विश्वास हो गया कि बहू ने असाधारण रूप ही नहीं, असाधारण भावुक हृदय भी पाया है । उसकी निर्दोष मुस्कान बहुत कुछ बता गई । बता गई के वंह अरूप जी के सच्चे व्यवहार पर मिटी है--उसका मन मेरी ओर से बिल्कुल साफ है । उसे कोई दुःख नहीं वह बहुत सुखी है ।

उदात्त चिन्तन की गरिमा से उद्भासित बहू का मुख मैं ध्यान से देखने लगी । वह कहती जा रही थी--"ऐसा सच्चा, निश्छल पति कितनी स्त्रियों को मिलता है ? चिन्ता एक ही है । उनके मन में टीस है, चुभन है, कसक है, उनकी दशा जुए में सर्वस्व हारे हुए व्यक्ति के समान है । किन्तु अब मैं आ गई हूँ–उनका वह सब वापस जुटा दूँगी जो वे जुए में हार गये हैं । तुम देख लेना–सखी !"

सुन कर मैं समझ गयी कि अरूप जी ने अपने मन के कपाट पत्नी के सामने पूर्णरूप से खोल दिए हैं ।

पल भर के लिए वातावरण नीरव हो गया । वह पुनः बताने लगी–"सखी उन्होंने अब तक जो भी इनी–गिनी रातें मेरे साथ बिताई हैं–उनमें देह तो मेरी ही थी–इस बात को मैं कैसे नकार सकती हूँ ! किन्तु उनके लिए तो उन रातों में तुम ही तुम थीं । उन्होंने किसी भी पल यह नहीं स्वीकारा कि उनके जीवन में कोई और आया है । उनका गहन–गूढ़–दर्शन तुम्हें कैसे समझाऊँ ! उनसे तो कहना उचित नहीं लगा पर अपनी सखी से सच्ची बात क्यों छिपाऊँगी ? मैं तो यही सोचती हूँ कि वे महा भ्रम में हैं–उसी भ्रम को हृदय से लगाए अप्राप्त को प्राप्त मान रहे हैं । मैं उनका सुख चाहती हूँ । यदि वे भ्रम में ही सुख मानते हैं, तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह भ्रम सच रहे, बना रहे । मैं उनका भ्रम क्यों तोड़ूँ ? उनको दुःख पहुँचाना तो मेरा धर्म नहीं है न ? तुम्हीं बताओ ।''

मैं क्या बताती ? मेरे पास बताने को था ही क्या ! वह चुप हो गई । उसकी आँखों में पुनः आँसू उमड़ने लगे । घबड़ा कर मैं उठ बैठी ।

मैंने दीन वाणी में कहा–''सखी ! तुम मुझे अपराधिनी समझती हो, तो मुझे माफ कर दो । मैं सच माफी माँग रही हूँ ।''

सुनते ही उन आँसू–भरी आँखों में कोमल, मनमोहक मुस्कान तैर गई । अपनी सुडौल बाहों की माला मेरे गले में डालती हुई बोली–''किसको माफ करूँ ? तुम्हें ? स्वयं अपने को ? अरे, सखी ! पति तो अर्द्धनारीश्वर है । उनका भ्रम मेरा भ्रम है । मैं अर्द्धांगिनी जो हूँ ! और इधर, मैं और तुम एकरूप हैं । अपने इसी रूप को देख पाने के लिए मैं व्याकुल हो उठी थी । तुम्हें देखा तो जैसे स्वयं अपने को देख पाई । दर्पण में नहीं--साक्षात् । प्रेम के व्यापक क्षेत्र में यह कैसा अभिनव प्रयोग है सखी ! अब तो इस भ्रम को सच रूप में ग्रहण करके ही जीना होगा । अगर कहीं यह भ्रम टूटा तो फिर मेरे जीने का कौन सा सम्बल होगा ? तुम और मैं दो नहीं हैं--एक हैं एक--ठीक वैसे ही जैसे नेत्र तो दो हैं, पर दृष्टि एक है--दृष्टि की इस एकरूपता को कितने जन समझते हैं ? बोलो, क्या मैं झूठ कहती हूँ ! हो सकता है कि तुम यह कहो कि सच तो यह है कि यह भ्रम है । पर मैं कहती हूँ--इस गोचर जगत् में भ्रम के अलावा और है ही क्या ! इसी भ्रम को सच समझ कर मनुष्य इसे छाती से लगाए सदा से जीता मरता आया है । मैं भी तो मनुष्य ही हूँ । इसलिए मैं भ्रम में ही जीती जाऊँगी, और भ्रम को ही छाती से लगाए............... ।''

बहू ने वाक्य पूरा नहीं किया, कुछ निमिष मेरे मुख पर दृष्टि गड़ाए जैसे कुछ ढूँढ़ती रही--बाहों की माला खोल वह उठ बैठी--मुझसे लिपटते हुए उसने अपना मुख मेरे कन्धे पर टिका दिया और उसकी बाँहें गोलाकार होती मेरे पृष्ठ भाग पर कस गयीं ।

पता नहीं कहाँ से और कैसे । जैसे मलयाचल से सुगन्धि के एक झोंके ने आकर मुझे चारों ओर से घेर लिया । प्रतीत हुआ कि काषायवस्त्रों में लिपटी गुलाब के पुष्पों की राशियाँ मेरे वक्षःस्थल से चिपक गयी हैं । मेरी अन्तरंग सखियाँ भी थीं, किन्तु आलिंगन का अनिर्वचनीय सुख मैंने पहली बार अनुभव किया । प्यार में आनन्द है, सुख है यह मैं समझने लगी थी, किन्तु मन का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्यार, मन के भाव, शारीरिक चेष्टाओं में रूप धर कर अपने दर्शन भी करा देते हैं, यह बात मेरे लिए सर्वथा अनजानी थी ।

मेरी यह विचित्र नई सखी, कुछ देर उसी मुद्रा में चुप बैठी रही । फिर उसी मुद्रा में कहने लगी–"सखी ! तुम्हारा नाम तो विधाता की दया से मुझे अबोध अवस्था में ही मिल गया था । अब तुम कुछ ऐसा करो कि जो कुछ तुममें अनदेखा और अनबूझा है, वह भी मुझे मिल जाए । वह पाए बिना मेरी सुगति नहीं है ।"

एक दम से मेरा ध्यान गया कि मेरा कन्धा भीग रहा है । मैंने एक झटके से उसका मुख अपने सामने किया, किन्तु उसने तुरन्त ही अपना मुख मेरी गोद में छिपा लिया ।

मैं द्रवित हो गयी । उसके मन्द--सुगन्धि को बिखेंरते, स्निग्ध केशों पर अपनी हथेली रख मैंने कहा--"सखी ! ईश्वर करे तुम्हें वह सब मिले जो तुम चाहती हो । तुम्हारा आँचल निरन्तर हरा–भरा रहे । उसमें कभी तपन न हो, कभी पतझड़ न हो । अपने एकान्त क्षणों में तुम्हारे लिंए भगवान् से यही मनाया करूँगी ।"

बहू ने अपना मुख ऊपर उठाया । सद्यःस्नात अरुण नेत्रों की स्निग्धता मेरे मुख पर छा गयी । मुग्ध दृष्टि से मुझे निरन्तर देखती हुई कहने लगी-- "मान गई । सखी तुममें जरूर कुछ ऐसा है जो औरों में नहीं, मुझमें नहीं, वह समझा तो जा सकता है, किन्तु बताया नहीं जा सकता । वे ठीक ही तो कहते हैं ।"

इसके आगे बातचीत नहीं हो सकी । भाभी आ गयीं, मेरी नानी ने घर चलने के लिए मुझे बुलवा भेजा था । मुझे जाना पड़ा । अर्द्धावगुण्ठन से उठे बहू के नेत्रों ने जो दृष्टि मेरे चलते समय मुझ पर बरसाई, उसे मैं कभी नहीं भूल सकी । सखियों का वह मिलन, अद्भुत मिलन, अल्पकालीन होते हुए भी चिरकालिक सा बन गया ।

इसके बाद ? इसके बाद समय चलता गया । छुट्टियाँ समाप्त हो गयीं । ननिहाल से मैं पुनः अपनी बुआजी के पास पहुँच गयी, और सदा की भाँति सब कुछ भूल कर पढ़ाई में जुट गयी ।

समय के चलने से विस्मरण की धूल उठती रही, स्मृति पर छाती गयी अन्ततः बहू की स्मृति धुँधली पड़ गयी । इतना समय बीता कि पुनः परीक्षाएँ आयीं और समाप्त हो गयीं । उस बार ग्रीष्मावकाश में मैं ननिहाल नहीं गयी, परीक्षाफल पर मेरी आगे की पढ़ाई निर्भर करती थी । मैं एक–एक दिन गिनने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगी । अधीर प्रतीक्षा के उपरान्त परीक्षा–फल आ गया, मैं प्रथम श्रेणी में और पराग द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होकर एम. ए. प्रथम वर्ष में पढ़ने की तैयारी करने लगे ।

जीवन में एक सा रंग कब रहा है ! इसमें तो एक के बाद दूसरा रंग आ ही जाता है । मेरे जीवन में भी नया रंग आया । यह रंग आया अनुराग के रूप में । बड़ी बुआ जी की सहोदरा ने अपने इस बेटे को ग्रीष्मावकाश में पढ़ाए जाने वाले किसी कोर्स को पढ़ने के लिए हमारे यहाँ भेज दिया था । कोर्स कुछ ही महीनों का तो था ही । इतने समय अनुराग अपनी मौसी के पास ही रह लेंगे, मौसी का घर होते हुए लड़का दूसरे स्थान पर रह ही कैसे सकता था !

अनुराग हमारे घर रहने लगे । नियम से युनिवर्सिटी जाने लगे । इस घर में यह कोई नई बात नहीं थी । कितने ही छात्र हमारे यहाँ आते रहते, परीक्षायें देकर चले जाते । जैसे हवा के झोंके एक ही दिशा से नहीं आते, विभिन्न दिशाओं से आते रहते हैं, जाते रहते हैं, वैसे ही दिशा–विदिशा से आए किसी न किसी मेहमान का घर में रहना हम सभी को मज गया था । किन्तु उन मेहमानों से अनुराग भिन्न माने गये । बड़ी बुआ जी की सगी बहन के पुत्र हैं । कौन बरस, दो बरस रहेंगे । कुछ ही महीनों की तो बात है । इसलिए भरपूर आतिथ्य होना चाहिए । जिससे जब कभी बुआ जी अपने मैके जाएँ तो उनका मस्तक गर्व से ऊँचा रहे । लोग समझ लें कि बड़ी बुआ जी की ससुराल ऐसी–वैसी नहीं है, जैसी सुनी थी, वैसी ही आन–बान वाली है । नहीं तो कितने देवर ऐसे हैं जो अपनी पतिविहीना भाभी को घर की मालकिन के रूप में अपने सिर आँखों पर बिठाए रहते हैं ! अनुराग को सबसे अच्छा अतिथि–कक्ष रहने को दिया गया । सुख–पूर्वक रहने की सारी व्यवस्था की गयी ।

यह सब तो था ही, पर एक गजब की बात और थी कि पता नहीं कैसे, पहले ही दिन से अनुराग का कुछ ऐसा आतंक घर–परिवार पर छा गया कि सेवक तो सेवक, घर के बच्चों तक की बोलती उनके सामने बन्द हो जाती । मुझे इस सबसे कुछ प्रयोजन नहीं था । मेरा स्वभाव कुछ ऐसा ढल रहा था कि मैं किसी भी पुरुष के सामने निकलना पसन्द नहीं करती थी । मेरी मण्डली सीमित थी । पराग, उसका छोटा भाई मधुस्रवा और मैं । हम तीनों को अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रहती थी । पर पता नहीं क्यों, अनुराग को देखते ही हम तीनों की ही सिट्टी–पिट्टी गुम हो जाती थी । किन्तु यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं रही ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम तीनों को ही कहानी सुनने का बेहद शौक था । यह शौक बड़ी बुआ जी नित्य ही हम लोगों के सोते समय रात को पूरा करती थीं । बुआ जी को कहानियों का भण्डार, अक्षय भण्डार कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । नित्य ही नयी कहानी उनके पास मिलती थी । कुछ कहानियाँ ऐसी सरस थीं कि उनकी पुनरावृत्ति हम लोग जब-तब कराते रहते । हम तीनों ही कहानी सुनते समय रस-विभोर हो जाते । अनुराग दूर से ही हमारी मण्डली को देख कर मुस्कराते हुए चले जाते । एक दिन पता नहीं किस तरंग में आकर वे भी हमारी गोष्ठी में शामिल हो गये-बोले-"मौसी जी ! आपके श्रोता तो बहुत छोटे-छोटे हैं, दो तो एम. ए. में पहुँच गए हैं, और एक हाई स्कूल में । मैं भी अपने को छोटा समझ लूँगा और आपकी कहानियों का श्रोता बन जाऊँगा । जरूर आपकी कहानियों में कोई अद्भुत रस है, ऐसा रस कि आपलोगों की हँसी की गूँज खिड़की की राह से मेरी पुस्तकों पर छा जाती है ।

अनुराग की विनोदपूर्ण उक्ति बुआ जी को तो हँसा गयी, किन्तु हम तीनों का मुँह एक साथ सूख गया । शायद तीनों ने एक साथ सोचा-"अरे बाप रे ! हमलोग इतनी जोर-जोर से हँसते हैं ?"

उस दिन से हमलोगों की हँसी तो सतर्क हो गयी, किन्तु श्रोताओं में सच ही अनुराग भी शामिल हो गये । वे श्रोता रहे तब तक तो कोई विशेष बात नहीं हुई, किन्तु कुछ ही दिनों में रहस्य खुला कि अनुराग कहानी कहने की कला में अति प्रवीण हैं । परिणाम यह हुआ कि बुआ जी तो श्रोताओं में सम्मिलित हो गयीं और अनुराग व्यासपीठ पर आसीन हो गये । कथा सुनते समय मैं सदा ही बड़ी तन्मय हो जाती थी । कथा-वाचक अनुराग व्यासपीठ पर से मेरी बालोचित तन्मयता पर मुक्त-हास्य कर बैठते, कहते-"इतनी बड़ी हो गयी, पर कहानी ऐसे सुनती है, जैसे दस साल की बच्ची हो ।"

उस समय जीवन-पथ पर दौड़ लगाते हुए मुझे यह ज्ञान नहीं था कि जिस मार्ग से होकर मैं भाग रही हूँ वह स्निग्ध है, और उसमें ढलान भी है । उन दिनों बड़ी बुआ जी हम तीनों को लेकर रात्रि में छत के जिस भाग पर सोती थीं, वह कुछ ऊँचाई पर था । कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर ही वहाँ पहुँचा जाता था । मुख्य छत से कुछ दूरी पर भी था । वहीं रात्रि में हम लोगों की कथा-गोष्ठी जमती थी । छत का यही भाग ऐसा था जिससे जुड़ा एक बरामदा और एक कक्ष था । ये दोनों ही बड़ी बुआ जी के एकान्त अधिकार में थे । प्रत्येक ऋतु में बुआ जी हम तीनों को लेकर इसी भाग में सोती थीं । एक प्रकार से कथा-गोष्ठियों के लिए यही स्थान आरक्षित था । अनुराग भी इसी स्थान पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहानी सुनाने बैठ जाते । एक दो बार ऐसा भी हुआ कि अनुराग कहानी सुनाते रहे और अन्य श्रोता सो गये । मैं सुनती रही । ऐसी स्थिति में अनुराग कुछ देर तो कथा सुनाते रहते फिर दूसरे दिन कथा कहने की बात कहकर स्वयं भी सोने चले जाते । कहानी अधूरी रह जाने से मुझे कुछ खीज आ जाती, पर चुप रह कर मैं स्वयं भी सो जाती ।

कहानी सुनते समय हम तीनों ही निर्भीक हो अनुराग से कुछ-कुछ पूछ लेते थे । किन्तु उसके बाद तो वे पुनः ऐसे हो जाते कि हम लोग पुनः आतङ्कित हो उनसे कतराते रहते ।

कुछ ही दिनों के पश्चात् हम तीनों ने समवेत स्वर में स्वीकारा-"कैसे विचित्र हैं अनुराग ! जो कह दिया वह पत्थर की लकीर, सोच लिया तो अमिट । झुकना तो जैसे जानते ही नहीं-कल रात को नहीं खाया, तो नहीं ही खाया । एक बार मुँह से नहीं निकली, तो बस "नहीं" अटल हो गयी । क्या लकदक सफेद खादी के कपड़े पहनते हैं । कमरा कितना साफ रखते हैं । फर्श तो ऐसा चमकता है, जैसे शीशा ।

पराग ने अपना विशेष ज्ञान घोषित करने के लिए उत्साह से भरकर कहा-"जीजी ! तुम्हें एक बात नहीं मालूम होगी । वे सबेरे उठ कर ध्यान लगाकर एक घंटा मौन रह कर चरखा कातते हैं । उसके बाद तब पढ़ाई शुरु करते हैं ।

"अरे हाँ, मैंने भी देखा है"-मधु भी ब़ोल उठा ।

भला मैं क्यों चुप रहती ! बोली-"इसमें कौन सी ताज्जुब की बात है । फूफा जी भी तो जेल में हमेशा चरखा कातने में ही तमाम समय लगाते हैं ।"

पराग एकदम से चुप हो कुछ सोचने लगा ।

"क्या बात है भइया ?" मैंने पूछा ।

"कल की बात तुम लोगों को नहीं मालूम । उस समय मैं काकी के पास ही बैठा था, सो मैंने सुन लिया । भाई साहब ने कल अपना नया कुर्ता, नया पाजामा एक विद्यार्थी को दे दिया, और साथ ही फीस और पुस्तकों के लिए तीन-सौ रुपये भी दे दिए । यह भी कहा कि वह हर महीने यहाँ आकर काकी से सौ रुपये ले जाया करे ।

पराग की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि मेरे मुँह से निकल गया-"गजब ! सौ रुपये ? हर महीने लायेंगे कहाँ से ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहाँ से लायेंगे ? सो भी सुनो, काकी से बोले–"मौसी मैं हर महीने तुम्हारे पास रुपये भेजूँगा । तुम इस विद्यार्थी को देती रहना ।" काकी ने कहा–"तू लाएगा कहाँ से ?" इस पर भाई साहब हँसने लगे, बोले–"बापू से लूँगा ।" "और अगर तेरे बापू ने नहीं दिए तो ?" काकी ने पूछा । "तो ? तो मैं ट्यूशन करूँगा । एक समय भोजन करूँगा, पर इस विद्यार्थी की पढ़ाई के लिए खर्चा जरूर दूँगा । इसके पिता क्रान्तिकारी दल के हैं । पाँच साल के लिए जेल में डाल दिए गये हैं । खर्च नहीं दूँगा तो वह पढ़ेगा कैसे ? मौसी ! वह पढ़ने में बहुत तेज है–मैंने सब सोच–समझ लिया है ।"

सुन कर काकी चुप हो गयीं ।

उस दिन रात में कहानी के समय अनुराग नहीं थे–बुआ जी ने कहा–"आज वह किसी दोस्त की सेवा करने के लिए अस्पताल में रहेगा । अजीब दिमाग पाया है इसने । आया है कोर्स करने, पर देखती हूँ कि देश–सेवा, लोक–सेवा के कोर्स ही इसके लिए ज्यादा जरूरी हैं ।"

इसी प्रसंग में वे अनुराग की और बातें भी बताती गयीं–"माँ बाप की सबसे छोटी सन्तान होने के कारण अनुराग बहुत ही दुलारा रहा है । वह दुलार ही संकट लाता रहा । इसके परिवार में इस जैसा कोई नहीं । जब छोटा था, विदेशी कपड़ों की होली लगाई जा रही थी । इसने बिना किसी से कुछ पूछे अपने सारे कपड़े जला दिए । जब कमरे से धुँआ आया तो घरवाले दौड़े, जाकर देखा कि कमरे के बीचोबीच कपड़े जल रहे हैं, और कुछ ही दूरी पर कमर पर दोनों हाथ रखे अनुराग प्रसन्नमुख एक टक वस्त्रों को जलता देख रहा है ।

अनुराग के बापू तो कुछ भी नाराज नहीं हुए, शान्तभाव से बोले–"बेटा ! होली कहीं कमरे के अन्दर लगाई जाती है ? वह तो आँगन में लगाई जाती है ।"

सुनते ही इसका उत्साह बढ़ गया–तुरन्त ही बापू की कमर से लिपटा हुआ बोला–"बापू खादी के कपड़े ला दीजिए तो ये पहने कपड़े भी जला दूँ, अबकी बार आँगन में जलाऊँगा, आप भी अपने कपड़े दे दीजिएगा ।"

" बापू उत्तर दे भी नहीं पाये थे कि हल्ला सुनकर अनुराग की माँ पूजा–घर से ठाकुर जी को स्नान कराना छोड़ कर भागी आयीं, दृश्य देख कर आपा खो बैठीं, अनुराग का कान पकड़कर उसे घसीटती हुई बरामदे में ले गयीं और वह धुनाई शुरू की कि बस पूछो मत । उधर ठाकुर जी आधा स्नान किये, थाली के गंगाजल में निरुपाय से बैठे ठंड खाते रहे, और इधर अनुराग, माँ के थप्पड़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और घूँसे खाता रहा । इसने माफी नहीं माँगी तो नहीं ही माँगी । हिमालय जैसा सिर उठाए बिना किसी विरोध के, बिना किसी चीख–पुकार के मार खाता गया, खाता गया । माँ हार रही थीं–क्रोध में–''ऐसे कीमती कपड़े जला कर राख कर दिए, तेरे बाप का क्या जाता है ?'' कह ही रही थीं कि इसके बापू धैर्य खोकर लपक कर पहुँचे और अनुराग को छुड़ा, गोद में उठाते हुए बोले–''इसकी माँ का तो इन कपड़ों के साथ लगता है सब कुछ चला गया, पर बाप का सच ही कुछ भी नहीं गया । बाप को तो आज बहुत कुछ मिला है, बहुत कुछ ।''

इतना कह कर वे अनुराग को गोद में लिए अपने कमरे में चले गये, और माँ रुआसी हो कर पूजाघर में जा, ठाकुर जी को स्नान–पात्र से उठा, उनका जल पोंछ, वस्त्र पहनाने लगीं ।

हम लोगों ने बुआ जी से ढेरों कहानियाँ सुनी थीं, किन्तु यह एक सर्वथा नयी कहानी थी, जिसका नायक हम लोगों के साथ था । अन्य कथाओं में बहुमूल्य वस्त्रदान की बात थी, किन्तु मूल्यवान् अपने ही वस्त्रों को जला कर राख कर देने की घटना इसी कहानी में सुनी ।

बुआ जी ने अनुरागं की पिटाई का वर्णन कुछ इस प्रकार किया कि हमें लगा कि जैसे अनुराग हम लोगों के सामने ही मार खा रहे हैं । हम लोगों की आँखों में आँसू भर आए थे । मैंने पूछा–

''बुआ ! उस समय अनुराग कितने बड़े थे ?''

''यही कोई सात साल का रहा होगा ।'' उन्होंने उत्तर दिया ।

इस उत्तर में जैसे मधु की जिज्ञासा का समाधान था–बोल उठा–''तभी तो बापू ने भाई साहब को गोद में उठा लिया था ।''

हमलोगों की रुचि और उत्सुकता के कारण बुआ जी ने आगे भी बहुत कुछ बताया । कहने लगीं–

''उसी दिन से घर भर के लोग अनुराग को ''हिमालय'' कह कर पुकारने लगे । इसके यहाँ जमींदारी है–इसके बापू का सारा समय उसी की देखभाल में जाता है । बड़े होने पर अनुराग ने एक और रंग दिखाया । जब कभी अपने गाँवों में पहुँच जाता, पता नहीं कितने गरीब किसानों का आधा लगान माफ कर देता । बापू ने इसके उस आचरण का भी कभी विरोध नहीं किया । बीच में इसे एक और सनक चढ़ी । गांधी जी के प्रभाव में आकर पढ़ना ही छोड़ बैठा । चार घंटे चरखा कातता, शेष समय देश–सेवा के कार्य में निकल जाता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह तो सद्बुद्धि आ गयी । फिर से पढ़ने लगा । अब कहता है–"मैंने नौकरी करने के लिए थोड़े ही पढ़ा है । मैं तो जो कुछ करूँगा सब स्वदेश के लिए । इसका एक कोई मित्र है, उसी के साथ पता नहीं किस चीज की फैक्टरी में काम करना चाहता है । कहता है कि गुलामी बहुत ही नीची बात है । मैं किसी की गुलामी नहीं करूँगा, पता नहीं क्या करेगा । घरवालों ने इसे "हिमालय" नाम ठीक ही दिया है ।"

बुआ जी ने और भी तमाम बातें अनुराग के बारे में बतायीं । सबका सार यही था कि वे अपने सिद्धान्तों में, हिमालय की तरह अडिग हैं–अगम हैं–उनके मन तक पहुँचना बहुत कठिन है । वे देना जानते हैं–लेने में तनिक भी आस्था नहीं । कहते हैं–"यह जीवन जो हम जी रहे हैं, दूसरों के लिए है, अपने लिए थोड़े ही है !"

जितनी देर बुआ जी अनुराग की कथा सुनाती रहीं, हम लोग मन्त्र–मुग्ध से सुनते रहे । और जब हम सोने गये तो लगा कि हम जैसे किसी दूसरी ही धरती से उठ कर आए हैं ।

इस संसार में कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनके मन की गहराई का पता उनके व्यवहार से, उनकी किसी भी क्रिया से नहीं चलता । अनुराग भी ऐसे ही थे । एक दिन की बात है–हम लोगों की मण्डली सोने का उपक्रम कर रही थी कि अनुराग आकर बोले–"मौसी ! मैं आज नीचे कमरे में ही सोने जा रहा हूँ । लगता है आज रात घोर वर्षा होगी । नींद टूटती है तो अच्छा नहीं लगता–कमरे में निश्चिन्त होकर सो जाऊँगा ।"

सुनते ही हम सबकी निगाह आकाश की ओर उठ गयी । उस समय वर्षा का कोई भी लक्षण नहीं था । मुझे हँसी आ गयी । अपने स्वभाव के प्रतिकूल कह बैठी–

"वर्षा होगी ? आप क्या ज्योतिष पढ़े हैं ? आज वर्षा नहीं हो सकती ।"

बुआ जी ने अनुराग का हाथ पकड़ कर उन्हें अपने ही पास पलंग पर बैठा लिया । अनुराग ने मेरी ओर देखते हुए कहा–

"अच्छा ! तो तुम्हारा ज्योतिष कहता है कि आज वर्षा नहीं होगी । मैं शर्त को अच्छा नहीं समझता, पर तुमसे शर्त लगा रहा हूँ, मौसी गवाह हैं, जो हारेगा उसे जीतने वाले को मुँहमाँगी चीज देनी होगी ।"

बुआ ज़ी तुरन्त ही कह उठीं–"ठीक है, मैं गवाह हूँ, पर अनू ! तू हार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जायेगा । तुझे मालूम नहीं–यह बिटिया जो बात कह देती है, सच निकल जाती है ।''

''हार जाऊँगा तो इन्हें मुँहमाँगी वस्तु दे दूँगा ।''

''और अगर इसने कहीं तुम्हारा चरखा ही माँग लिया तो ? दे सकोगे अपने गान्धी बाबा का दिया चरखा ? अपने से अलग कर सकोगे ?'' बुआ जी ने हँसते हुए पूछा ।

अनुराग कुछ द्विविधा में दिखाई पड़े–फिर बोले–''अगर शर्त हार जाऊँगा तो वचन पूरा करने के लिए कुछ भी दे सकूँगा ।''

कहने के साथ ही वे नीचे चले गये ।

महत् आश्चर्य ! उस दिन मेरी ही वाणी असत्य हो गयी, अनुराग के नीचे चले जाने के कुछ ही घंटे बाद आंधी, और उसी के बाद बादल–बिजली, घोर वर्षा, ओले–सभी तो आए और कुछ घंटे अपना रंग दिखाकर चले भी गये । सबेरा होने पर सारी धरती नहाई हुई, चतुर्दिक हरियाली हँसती, मुस्कराती चमक रही थी, और सूर्य, हलके बादलों से धीरे–धीरे बाहर आकर कोमल प्रकाश बिखेरना चाह रहा था ।

शर्त की हार से मेरे मन में कुछ खिन्नता और उदासी छा गयी । मुझे क्या पता था कि यह हार ही मेरे जीवन में महान् विजय का कारण बनेगी, और मेरे मन की खिन्नता और उदासी किसी ऐन्द्रजालिक के द्वारा आनन्द के, हर्ष के फूलों में परिणत हो जाएगी ।

जब अनुराग से मेरा सामना हुआ तो मेरी दृष्टि चुपके से उनके मुख पर चली गयी । पर वहाँ तो कुछ भी नवीनता नहीं थी । प्रतिदिन की सी संयत, गम्भीरता से ढँकी मुस्कान और सन्तोष चमक रहे थे । मैं आश्वस्त हो गयी ।

''अरे, ! वह सब तो विनोद की बात थी–मैं व्यर्थ ही परेशान हो उठी थी''–मैंने सोचा ।

पर वह विनोद की बात कब थी !!

अनुराग का क्लास दिन में ग्यारह बजे से दो बजे तक होता था । क्लास से आने पर वे सीधे अपने कमरे में चले जाते थे । शर्त के तीसरे दिन मैं अपने कमरे में पलँग पर लेटी समाचार–पत्र पढ़ रही थी कि अधखुली, पर्दे से ढँकी, खिड़की से सुनाई पड़ा–''अन्दर आ सकता हूँ ?''

यह एक अकल्पित घटना थी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शंकाकुल मन से मैंने बिना कुछ उत्तर दिए ही द्वार खोल दिया ।

उष्ण पवन के झोंके के साथ ही अनुराग मेरे कमरे में प्रविष्ट हुए । द्वार का पर्दा, उनके हाथ से छूटते ही यथाशक्ति कक्ष में पवन के प्रवेश में अवरोध उत्पन्न करने लगा ।

इस प्रकार अनुराग अचानक ही पहली बार मेरे कमरे में आए । कमरे की अव्यवस्थित दशा पर उनका ध्यान भले ही न गया हो, पर मेरा गया । उस काल मैं लज्जा से गड़-सी गयी ।

पलँग की ओर संकेत कर स्वयं मेज के पास रखी कुर्सी को आगे खींच, उसी पर बैठते हुए बोले-"बैठो, बैठ जाओ । खड़ी मत रहो । मैं तुमसे कुछ जरूरी बातें करने आया हूँ ।"

मैं तुरन्त ही बैठ गयी । प्रश्न-भरे मेरे नेत्र उनके मुख की ओर उठे और निमिषमात्र में ही नीचे झुक गये ।

उनके पल, दो पल के मौन ने बता दिया कि वे अपनी बात कहने के लिए शब्द खोज रहे हैं । मेरी अधीर दृष्टि पुनः उनकी ओर उठ गयी ।

वे मेरी ओर देख रहे थे, शायद मेरे मन को टटोलना चाहते थे ! संभवतः मेरी अधीर दृष्टि ने ही उन्हें कुछ कहने के लिए बाध्य कर दिया ।

"आज की बातें तुम्हें कुछ अनहोनी सी लग सकती है । इस समय मैं यह याद दिलाने आया हूँ कि तुम शर्त हार चुकी हो । मुँहमाँगी चीज देने का वचन दे चुकी हो । बोलो वचन पूरा करोगी ?............ बोलो, बोलो, डरो नहीं । पता नहीं क्यों, तुम सभी तो मुझसे आतंकित रहते हो ।"

चुप रह जाने का बहाना असम्भव जान पड़ा । मैंने एक बार पुनः उनकी ओर देखा, चकित रह गयी, उनके मुख की दृढ़ता में से कैसी कोमल स्निग्धता झाँक रही थी !

"जी हाँ, अपना वचन पूरा करूँगी । जो आप माँगेंगे, अगर मेरे पास है तो मैं निश्चय ही दे दूँगी । आप बताइए, क्या माँगते हैं ?" मैंने धीमे से कहा ।

"निश्चय ही दे दोगी ? सच ? एक बार फिर सोच लो ।" कहने के साथ ही उनका मुख गुलाबी हो आया ।

"जी हाँ, सच ही तो"-उनकी ओर देखते हुए मैंने कह दिया । अनुराग ने कदाचित् कुछ सोचा नहीं, झट से कह डाला ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"मैं तुम्हीं को माँगता हूँ । मुझे मालूम है कि तुमने अभी तक आत्मदान नहीं किया है । यह दान मुझे चाहिए । दान, "दान" के रूप में नहीं, वरन् विजय के प्रतीक के रूप में । मैं दान नहीं ग्रहण करता, क्योंकि मेरी पूर्ण आस्था है दे देने में ।"

सुनते ही मुझे लगा कि "धड़ाम-धड़ाम" सारी छत ही मेरे सिर पर आ पड़ी है । तन-मन को लिए मेरा सारा अस्तित्व ही पल भर के लिए अवसन्न हो रहा । मैंने सोचा था कि इन्होंने मेरी छिटपुट कवितायें बुआ जी के पास देखी हैं-काव्य में विशेष रुचि है-इसलिए मुझसे मेरी कविताओं की माँग करेंगे-पर मेरी वे छोटी-छोटी साधारण सी कवितायें क्या किसी को दिखाने योग्य थीं ? यही संकोच था, यही लज्जा थी । पर यह कैसी विचित्र माँग ?

क्या उत्तर देती ! कुछ भी समझ में नहीं आया । विमूढ़ता की स्थिति में मस्तिष्क कुछ सोच ही नहीं पा रहा था । चुप रह गयी ।

"तुमने जवाब नहीं दिया ?" उन्होंने उठते हुए कहा ।

"मैं कुछ समझी नहीं"-कह कर मैं पुनः मौन हो रही ।

"तुम्हारी बात पर मैं अविश्वास नहीं करूँगा । अगर सच ही नहीं समझीं तो समझने की कोशिश करना । जरूर समझ जाओगी-जब समझ में आ जाए, तभी उत्तर दे देना"- कहने के साथ ही वे अपने कमरे की ओर बढ़ गये ।

कुछ देर तक तो मैं हत-बुद्धि सी बैठी रही । किन्तु मानसिक उलझन ने निष्क्रिय नहीं रहने दिया । उठकर बरामदे में निकल गयी । उस समय धूप ही धूप चारों ओर फैली थी । सामने के कक्ष में ठंडे जल की व्यवस्था रहती थी । वहीं पहुच गयी । घड़े से लेकर एक गिलास शीतल जल एक ही सांस में पी गयी । छाती में ठंडक पड़ी । मस्तिष्क को चैन मिला । तभी ध्यान आ गया अनुराग का-"इतनी धूप में, युनिवर्सिटी से साइकिल पर आए हैं-आज धूप भी कैसी तो जान-लेवा है, जरूर ही प्यास लगी होगी"-सोचते हुए एक चमचमाते काँसे के गिलास में शीतल जल लेकर, उनके कमरे के द्वार से बाहर ही खड़े रहकर मन्द स्वर में मैंने कहा-

"पानी ले लीजिए ।"

"धन्यवाद । अनुचित न हो तो यहीं दे जाओ ।"

सुन कर मैं कमरे के अन्दर चली गयी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुराग उठ कर बैठ गये, बिना कपड़े बदले ही वे पलँग पर पड़ गये थे, सम्भवतः कुछ परेशानी का अनुभव कर रहे थे ।

गिलास हाथ में पकड़े हुए बोले-''लगता है तुम्हारी समझ में आ गया है । नहीं समझती तो आज अचानक स्वयं ही ठंडा पानी लेकर उपस्थित न हो जातीं । तुम्हें समय दे रहा हूँ । मन पक्का कर लो । दो दिन बाद ''हाँ'' या ''ना'' में उत्तर लिख कर इसी पलंग पर रख जाना । तुम्हें संकोच में नहीं डालना चाहता ।''

सुन कर, मैं बिना कुछ कहे ही अपने कमरे में वापस आ गयी ।

उस दिन की प्रचण्ड धूप से तपती दुपहरी, घर की तीनों मंजिलों में सन्नाटा, पर मेरे मन में घोर कोलाहल । चारों ओर के पर्दे खींचकर, तेज पंखा चला कर, तन-मन शीतल करने का प्रयत्न करने लगी । विचारों और भावों की परस्पर टक्कर, जैसे अरणि-काष्ठ से अग्नि उत्पन्न हो रही हो । व्याकुल होना, धैर्य खोना, किंकर्तव्यविमूढ़ होना, मेरी प्रकृति के लिए स्वाभाविक नहीं था । पर उस समय जैसे सब अस्वाभाविक हो उलट-पुलट हो गया था ।

धीरे-धीरे संध्या आई और खिसकने लगी ।

घर में जागरूकता, व्यस्तता के मध्य अन्ततः रात्रि आ गयी, सोने के पहले नित्य की भाँति कहानी की बैठक । परीक्षा सन्निकट होने से अनुराग पिछली बैठक में नहीं आए थे । हमें पता था कि वे अब कहानी में समय नहीं दे सकेंगे । अतः बुआ जी ही पुनः कहानी सुनाने लगी थीं । पर आज अचानक वे पुनः आ पहुँचे, देख कर मुझे कुछ अटपटा सा लगा ।

बुआ जी के पार्श्व में ही बैठते हुए अनुराग ने कहा- ''आज तो मैं भी आपकी कहानी जरूर सुनूँगा ।''

मैं नहीं जानती कि उस दिन बुआ जी ने कौन सी कहानी कही, मैं सब सुनते हुए भी कुछ नहीं सुन रही थी । उस समय तो अनुराग ही जैसे सर्वव्यापी हो उठे थे । सबकी दृष्टि बचा कर मैं उन्हें देखती रही । तभी अनुभव हुआ कि मैंने, जो मेरे लिए अलभ्य था, उसी को पा लिया है-मेरे चारों ओर उल्लास ही उल्लास है । उन क्षणों में मेरी कल्पना ने अनुराग में कर्म-सौन्दर्य, वाक्-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य तीनों के दर्शन किये । कल्पना में ही समग्र सृष्टि मेरे लिए आनन्द का महास्रोत बन गयी ।

वह रात ! मैं कभी भूलने की नहीं । अभिनव, अविराम भावनायें जागतीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और मुझे जगाती रहीं, अन्तर हर्षोन्मत्त हो कह उठा–"यह तुम्हारे जीवन की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है ।"

सर्वथा नवीन, विचित्र, सिहरन मेरे रोम–रोम को चंचल कर गयी ।

बस, तत्क्षण, मन की उमंग माधुर्य के सागर में डुबकियाँ लगाती जैसे उसी में खो गयी । दूसरे दिन, सारे दिन जैसे मेरे पैर धरती पर पड़ते ही न थे । रात्रि के एकान्त क्षणों में, मानस में निरन्तर गूँजती मधुर–मधुर भावनायें शब्दबद्ध हो उठीं, मैंने लिखा–

सूर्य का तो उदय, नित सबको मिला ।
पर हिमालय, कब उदित होता भला ॥
वह अचल है, कब हिलाए से हिला ?
उच्च है क्या इसलिए, वह स्वयं नभ से जा मिला ?
वह हिमालय चारु चित्रित, हो उठा मन भीति पर ।
झरझराते निर्झरों से, धार मधु की वार कर ॥
एक कम्पन मधुर सा, अनजान में ही हो गया ।
औ, अचानक दिव्य रस में, मन हमारा खो गया ॥
श्रृंगार रस ने तब उठाई, कल्पना की भित्तियाँ ।
उस कल्पना से झर पड़ी हैं, काव्य की ये पंक्तियाँ ॥

इस अन्तस्थल से फूट पड़ी माधुर्य स्रोत की ऊर्ध्वगामी भावाभिव्यक्ति से मेरे अन्तस् का कोलाहल मन्द पड़ गया । मैं नित्य की भाँति सुख की नींद सो गयी ।

जब सबेरे जागी तो प्रतीत हुआ कि यह संसार तो कोई नया ही संसार है–हर्षोल्लास से चहकता, आनन्द से थिरकता, सफलता से दमकता और आन्तरिक स्फूर्ति–जन्य प्रसन्नता से किलकता संसार ! मुकुलितमन और पुलकित तन, स्वर्णिम कल्पनाओं में डूबती–उतराती मैं गृहकार्य में मग्न हो गयी ।

उस दिन रविवार था, इस रविवार का जैसा कुछ स्वागत मेरे मन ने किया, वैसा न कभी किया था और न भविष्य में ही कर सका । स्वर्णिम प्रकाश बिखेरता, दमदम दमकती, आँखों को चौंधिया देने वाली दोपहर आई । गृहवासी तपन से बचने के लिए अपने–अपने कक्षों के शीतल नीड़ों में जाकर विश्राम पाने लगे । उन नीड़ों के बाहर का वातावरण सर्वथा सहनशील बन कर नित्य ही उष्ण पवन के थपेड़ों को सह जाता था । उस दिन भी सहने लगा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्दी–गर्मी, उस समय मेरे लिए इस जगत् से ही विलुप्त हो गयी थी। द्वार बन्द करने का, उसे उढ़का देने तक का मुझे होश ही कब था ! मन की तरंगों की शीतलता बड़ी ही सुखद थी, और वही मुझ पर छा गई थी।

सोचा, एक बार पुनः अपनी नव–सर्जना को स्वयं देखूँ–डायरी का पृष्ठ खोल, नवरचित रचना की पहली पंक्ति ही पढ़ पाई थी कि लगा जैसे कोई मेरे पीछे खड़ा है। घूम कर देखा तो सन्न रह गयी, अनुराग खड़े मुस्करा रहे थे। वही मुस्कराहट वाणी का रूप रखकर आई, कहने लगे--

"आज द्वार तो खुला ही है, खिड़की का पर्दा भी आधा खुला है, अनायास मेरी निगाह उठ गयी, देखा कि तुम तन्मय होकर कुछ पढ़ रही हो। शिष्टता नहीं निबाही–बिना पूछे ही तुम्हारे कमरे में आ गया। दोपहर थी, शीतल जल की इच्छा से निकला था, दिख गयी तुम, सोचा कि अब बिना माँगे जल पिलाने वाला सामने है तो बिन माँगे जल मिलेगा ही, बस चला आया। माफ करना।"

अनुराग को देखते ही मैं कुर्सी से उठ गयी थी। वे खड़े रह कर ही इतना सब बोल गये, तभी मैंने लक्ष्य किया कि उनकी निगाह डायरी के खुले पृष्ठ पर अंकित पंक्तियों में अटक गयी है।

जैसे मेरी चोरी पकड़ी गयी हो–'अभी आई'–कहते हुए मैं विद्युत्–गति से कमरे के बाहर निकल गयी और जल के कमरे में ही जाकर साँस ली। वहाँ पहुँच कर कुछ देर यों ही खड़ी रही, स्वयं पानी पिया और गिलास में जल भर कर अपने कमरे में ले गयी।

अनुराग को गिलास पकड़ाते हुए मुझे अनायास ही दिख गया–सद्यः–विकसित अरुण वर्ण गुलाब–सा विहँसता उनका मुख। उन्होंने सारा जल पी लिया। गिलास वापस मेरे हाथ में पकड़ाते हुए–

"धन्यवाद"–कहने के साथ ही उनकी दृष्टि मेरे नेत्रों से, निमिष मात्र में पता नहीं क्या–क्या कह गयी............।

इसके पश्चात् वे तनिक भी नहीं रुके, चले गये। उनके चले जाने पर मुझे उस जड़ कुर्सी से, जिस पर मैं नित्य ही बैठती थी, बड़ा मोह लगा।

"वे इस कुर्सी पर दो दिन बैठ चुके हैं, अभी–अभी इसी पर बैठे थे ! अरे ! यह कैसी नवीन अनुभूति ?"

सोचते हुए मैंने कुर्सी पर हाथ रखा–"कैसी सिहरन उत्पन्न करने वाला स्पर्श। न जाने कैसा उन्माद !" उस काष्ठ–निर्मित कुर्सी के हत्थे पर मैंने अपना मुख रख दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

''अभी-अभी इसी जगह उनका हाथ रखा था ।'' आनन्दमग्न मन बोला । उन उन्मादक क्षणों में जैसे वह जड़ ही मेरे लिए चेतन हो उठा, कठोरता नवनीत की कोमलता में ढल गयी । कैसा रोमांचकारी स्पर्श था उस जड़ पदार्थ का ! क्या वह सच ही जड़ था ?''

मेरे कमरे में अनुराग की उपस्थिति के वे इने-गिने क्षण ! पता नहीं मेरे मानस-कोष से क्या-क्या बटोर ले गये, और क्या-क्या मुझ पर लुटा गये, मैं जान ही नहीं सकी । मैं उसी कुर्सी पर बैठ गयी । मेरी देह पुलक से भर उठी । और तभी मेरी दृष्टि डायरी के खुले पृष्ठ पर जा पड़ी ।

एक नवीन आश्चर्य ! मेज पर रखी लाल स्याही वाली, मेरी ही कलम से, दो पंक्तियाँ, ठीक मेरी पंक्तियों के नीचे अंकित थीं-

''काव्य की इन पंक्तियों में, निहित जो संगीत है-

विजयी हुए इस गर्व से, रसराज का क्या गीत है ?''

मैंने पढ़ा-पढ़ती रही-एक बार, दो बार, पता नहीं कितनी बार ! जब पढ़ती एक नया अर्थ । जैसे सागर की गहराई का पता उसके तटसे नहीं लगता, आगे बढ़ो, बढ़ते जाओ, रुक जाओ, आगे अगम जल है, डूबने का भय है । लाल स्याही से लिखी उन दो पंक्तियों के अर्थ, उनके भाव मेरे लिए अगम हो उठे । मैं अपनी सर्जना पढ़ना भूल गयी-रम गयी उन दो पंक्तियों के तटों के मध्य बहने वाली उस धारा में जो सीमा का, मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं करती, फिर भी जीवन-दान करती है; सदाशयता का कैसा विचित्र सम्मोहन !

और मैं कहाँ से कहाँ पहुँच गयी ! यह कैसा इन्द्रजाल ! मैं क्या थी ? और क्या हो गयी ?

इसके बाद !

इसके बाद मेरा और पराग दोनों का ही युनिवर्सिटी जाना आरम्भ हो गया । एम. ए. में हम दोनों ने ही संस्कृत विषय लिया । और तब ?

तब एक दिन अनुराग की परीक्षा समाप्त हो गयी ।

पिछले कई दिनों से मेरा आमना-सामना उनसे नहीं हो पाया था । मुझे लगा जैसे युग बीत रहे हैं । और तभी उनके अपने घर लौट जाने की चर्चा चल पड़ी ।

पता नहीं कितने उपहार उन्होंने घर-भर में बाँटे । जाते समय, विदा लेने के कुछ ही क्षण पूर्व, शीतल पवन के झोंके के समान वे मेरे कक्ष में प्रविष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुए, उन्हें देखते ही मैं खड़ी हो गयी ।

"तुम्हारी मूकता में ही तुम्हारा उत्तर मुझे मिल गया था । उत्तर समझते ही मुझे विश्वास हो गया था कि संसार-सागर में मेरी दृष्टि में जो मोती अमूल्य था वही मेरे हाथ आ गया है, उसी मोती को लेकर जा रहा हूँ, विश्वास है उसकी रक्षा कर सकूँगा । अपनी इस आशातीत उपलब्धि की घोषणा संसार के समक्ष अभी नहीं कर सकूँगा, उस दिन की प्रतीक्षा करूँगा, दूर जा रहा हूँ"--कह कर अनुराग जैसे ही चुप हुए कि मेरी दृष्टि उनकी ओर स्वतः उठ गयी ।

वे मेरी ही ओर देख रहे थे । निमिष मात्र के लिए मेरी दृष्टि उनकी दृष्टि से जा मिली । मेरी दृष्टि वहीं ठिठक गयी-"अरे ! यह कैसी सजल दृष्टि । मेरे मन ने कहा ही था कि उनके मुख पर मुस्कान की आभा छिटक गयी । "अच्छा"!.................." कहने के साथ ही वे चले गये ।

और उनके जाते ही..................मेरे लिए अन्तर और वाह्य जगत्, दोनों ही में शून्यता सी फैल गयी । अनुराग का पीछा करता हुआ, पता नहीं मेरा क्या-क्या चला गया । उनकी सजल दृष्टि और आभा-स्नात मुस्कान मेरी स्मृति में बारम्बार उभरने लगे--जैसे जल में सूर्य की प्रथम रश्मि का आलोक । श्यामता को विलीन करता कलरव जगाता, फिर भी शान्ति बिखेरता, कितना निर्मल । अपने कोमल स्पर्श से निष्क्रियता, मन की उलझनों को दूर भगाता, जागरण फैलाता हुआ ।

इस स्मृति ने मेरे अन्तर में व्याप्त शून्यता को भावनाओं के कलरव से भर दिया, और विदा के समय कहे हुए अनुराग के शब्दों ने अन्तस् को प्रस्फुटित होती हुई नव-नव कलियों से भर दिया ।

मुझे पूर्ण आशा थी कि अनुराग घर पहुँच कर मुझे पत्र लिखेंगे । पत्र तो आया, किन्तु फूफा जी के नाम । मात्र कुशल-क्षेम का औपचारिक पत्र ।

दिन पर दिन बीतते गये । यहाँ तक कि युनिवर्सिटी, कालेज सभी में अध्ययन-अध्यापन का कार्य तीव्र गति से होने लगा । परीक्षाएँ समीप आने लगीं । रात की कहानी की बैठकें भी बन्द हो गयीं । हम तीनों ही पढ़ाई में जुट गये ।

पर अजीब सी बात थी, जब-जब कोर्स की पुस्तक मैं खोलती, पढ़ते हुए मेरा ध्यान चुपके से खिसक कर अनुराग के पास पहुँच जाता । ध्यान की इस चंचलता से मैं मन ही मन खीझने लगी । जब कभी खीझ कर आत्म-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भर्त्सना कर, मन शान्त करती तो सोचती–"हे भगवान् ! यह कौन सी व्याधि है, जो पीछे लग गयी ?"

अपनी मण्डली में भी अब मुझे अच्छा नहीं लगता था । धीरे–धीरे मैं कैसी तो एकाकी हो आई । अनुभव होता जैसे कि मैं किसी निर्जन प्रदेश के सन्नाटे में भटक गयी हूँ ।

उस सन्नाटे से, भटकन से मुझे एक दिन मुक्ति मिल ही गयी ।

बड़ी बुआ जी उन दिनों रामायण के मास–पारायण में लगी थीं । उसके समाप्त होते ही उन्होंने मेरी ओर ध्यान दिया ।

पुरानी पीढ़ी की होने पर भी बुआ जी की सहृदयता, संवेदना और उदारता का ओर–छोर न था । मुझे पता था कि अनुराग बुआ जी को सारी बात बता कर गये हैं । किन्तु बुआ जी इस प्रसंग में भी मेरे प्रति इतनी ममतासिक्त, करुणामयी हो उठेंगी, यह विश्वास नहीं था ।

इस परिस्थिति में उलझ जाने पर ही मैंने समझा कि बड़ी बुआ जी वस्तुत: मेरी अन्तरंग सखी के समान हैं । सम्भवत: वे मेरा मुख देख कर ही मेरी अन्तर्दशा को समझ गयी थीं । उन्होंने अपनी दिनचर्या में एक कार्य और जोड़ लिया । युनिवर्सिटी से मेरे घर आ जाने पर वे नित्य ही अनुराग की चर्चा करतीं, हँस कर कहतीं–"कुछ दिन के लिए पढ़ना कुछ कम कर दे–झूठमूठ मन को क्यों ठगती है ? मन पर अत्याचार करने से वह हठी हो जाता है । उसे थोड़ी छूट दे, कुछ दिनों में वह अपने पुराने रास्ते पर लौट आएगा ।"

तदुपरान्त, एक दिन जब वे मेरे कमरे में आईं, उनके मुख पर भेद–भरी मुस्कान झलक रही थी । बिना कुछ कहे ईषत् हँसते हुए उन्होंने एक नन्हा सा लिफाफा मेरे हाथ में पकड़ाया और तुरन्त ही लौट गयीं ।

लिफाफा हाथ में पकड़े मैं उनका यों अकस्मात् चला जाना आश्चर्य से देखती रही । जब मैंने लिफाफा खोला तो एक नन्हा सा कागज निकला । उस पर कुछ पंक्तियाँ–न कोई सम्बोधन, न हस्ताक्षर–मैं समझ गयी–पहचान गयी कि ये पंक्तियाँ अनुराग की ही हैं । मैंने झट से पढ़ा, पढ़ा क्या, जैसे डूब ही गयी, लिखा था–

संदेश मेरे हृदय का, देगी तुम्हें यह लेखनी ।
पर कह सकेगी बात क्या? जो है नहीं लिखते बनी ॥
आज इतना ही लिखूँगा, बस करूँगा कह यही ।
समझ लोगी तुम उसे, जो रह गयी है अनकही ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोमरस की चर्चा मैंने वेदों में पढ़ी थी, पर सोमरस कैसा होता है, उसका प्रभाव कैसा होता है । यह बात मैंने अनुराग की इन पंक्तियों से समझ ली ।

दो तीन दिन इन्हीं इनी गिनी पंक्तियों के मदिर-प्रभाव में बीत गये । क्या उत्तर दूँ ? क्या लिखूँ ? उधेड़ बुन में पड़े रह कर ही मैंने उत्तर में लिखा-

पत्र पाकर आज ही ऋतुराज की ऋतु आ गयी ।
जो कुछ नहीं तुम लिख सके, वह पत्र में मैं पा गयी ॥
उत्तर न देना पत्र का, यह शील को भाता नहीं ।
पर क्या लिखूँ अब मैं तुम्हें ? कुछ भी समझ आता नहीं ॥
पंक्तियाँ पढ़ कर तुम्हारी, हम विवश से हो रहे ।
हैं समझने आज तुमको, भाव मेरे अनकहे ॥

और तब-

बड़ी बुआ जी को अकेला पाकर अनुराग का पत्र और अपने द्वारा लिखा हुआ उत्तर उन्हें देते हुए मैंने कहा-"आप पढ़ लें, उचित समझें तो भेज दें ।"

मैं उनके पास रुकी नहीं । कैसे रुकती ! वापस आ गयी, बड़े भारी भार से मुक्त-एक नये आह्लाद से घिरी हुई ।

तदुपरान्त जैसे चारों ओर वसन्त का वैभव स्वयमेव थिरकने लगा । नये अँकुर, नये कोंपल, नये किसलय, नयी कलियाँ । और वे ही कलियाँ कुछ ही समय में चटक-चटक कर खिलती हुई, प्रत्येक पंखुरी के साथ अपना अन्तर और अन्तरतम अनावृत कर लज्जा से झुकी, खिल पड़ीं ।

अबकी बार अनुराग का उत्तर बहुत जल्दी आ गया । वैसी ही-इनी गिनी पंक्तियों में-बुआ जी के ही माध्यम से-

वह नन्हा सा पत्र-मेरे लिए पत्र-मात्र नहीं, उस राजकोष का बहुमूल्य रत्न था जिसकी महिषी बनने का स्वप्न मैं देख रही थी । कोई देख न ले, कोई जान न ले, सारी सावधानी बरतते हुए-चारों ओर से कमरा बन्द कर रोमांचित तन और उमगते मन से एकान्त में मैंने पत्र खोला-पढ़ा-

पाकर तुम्हारा पत्र मेरा, मन सुमन-सा खिल गया ।
एक झोंका औ हमारा मन-सरोवर हिल गया ॥
जीवन हमारा है मगर, अब से तुम्हारा हो गया ।
मन को तुम्हारे समझकर, भावी सुनहरा हो गया ॥

मैं इन पंक्तियों को पढ़ती रही-मन ही मन गाती रही-और ये चार पंक्तियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे लिए कभी न समाप्त हो सकने वाला विशाल ग्रन्थ बन गयीं । कुछ पल अपरिचित मादक भावनाओं के सागर की अतल गहराई में डूबी रही । उस गहराई से बाहर आने पर मेरा मन तीव्र उत्कट लालसा से घिर गया ।

"उत्तर लिखूँ–अभी लिखूँ–पर कैसे लिखूँ ?"

उधर, उतने बड़े घर में उस समय कोई भी तो निर्जन, एकान्त कोना नहीं था और इधर धैर्य नहीं था, पर धैर्य धरना पड़ा । बड़ी बेकली के बाद रात में पढ़ने के समय सुयोग प्राप्त हुआ–सोचने लगी–"क्या लिखूँ ?" बहुत सोच–विचार के पश्चात् लिखा–

इस पत्र–लेखन मध्य ही, जीवन हमारे बह रहे ।
लघु शब्द ही तो, अब हमारे भाव जी के कह रहे ॥
लिखना बहुत कुछ चाहती हूँ, पर लिखूँगी मैं नहीं ।
तीव्र मधु की धार में मैं, बह न जाऊँ, अब कहीं ॥

दूसरे दिन सबेरे, जैसे ही बड़ी बुआ जी ने पूजा समाप्त की कि मैं अपना नन्हा पत्र उन्हें देने गयी । मुझे देखते ही वे हँस पड़ीं, पत्र अपने हाथ में लेते हुए बोलीं–"बड़ी उतावली हो रही है ?"

मैं झेंप गयी । बिना कुछ उत्तर दिए ही अपने कमरे में भाग आई । आकर, पढ़ाई जम कर करने का संकल्प लिए जैसे ही मैंने पुस्तक खोली तो अक्षरों के स्थान पर बुआ जी का विनोद स्मरण हो आया ।

बुआ जी मेरी सखीवत् तो थीं, किन्तु मर्यादा का पूर्ण पालन दोनों ओर से हो रहा था । इसीलिए अनुराग के सम्बन्ध में भी वे मर्यादा के शोभाशाली कगारों के मध्य ही हमारी भावनाओं के विकासोन्मुख प्रवाह में गति भर रही थीं । वस्तुतः वे ही तो वह स्तम्भ थीं, जिसके सहारे दो लतायें पनपती हुई, विकसित होती हुई, एकाकार होती हुई, कलियों से भरती जा रही थीं । सुन्दर, अतिसुन्दर, मनोरम कलियों से !

उन दिनों पढ़ाई करने के बाद पराग और मधु के सो जाने पर, बुआ जी कुछ देर के लिए मुझे अपने पलँग पर बुला लेती थीं । उस समय वे मुझसे इधर–उधर की चर्चा करते हुए किसी न किसी प्रकार अनुराग का प्रसंग ले आतीं । मेरे लिए यही प्रसंग सर्वाधिक सरस होता था । बुआ जी से तो कुछ भी छिपा नहीं था । उनके हृदय में मुझे और अनुराग को लेकर जो रंग–बिरंगी कल्पनायें उठने लगी थीं, उन्हें वे मुझे विस्तार से सुनाया करतीं । उनसे कुछ भी छिपा न पाकर भी मैं अपने में संकुचित रहती । और तभी अनुराग का एक पत्र और आया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिरप्रतीक्षित मधु-प्रपात के रूप में-लिखा था-

सयम सदां शोभन जगत में, मैं न भूला हूँ कभी ।
आदर्श तुमको मान कर, मस्तक झुकाया है अभी ॥
उच्चता की ओर यदि मैं, बढ़ सका तो देखना ।
मैं हूँ हिमालय सा, तभी साकार होगी कल्पना ॥
कुछ काल रहकर 'मूक' हम तुम, माप लें निज शक्ति को ।
कंचन सरीखा हम करें, पारस्परिक इस भक्ति को ॥

पत्र पढ़कर मैं समझ गयी । हिमालय का "मूक रहने" का विनम्र आदेश । उदात्त भावनाओं की शाखा, प्रशाखाओं से हरे-भरे, पुष्पगुच्छ, भारावनत शीतल छाया-दायी वृक्ष के बीजारोपण के पूर्व एक व्रत का संकल्प । कोई भी विकल्प नहीं था । मूकता को अपनाना ही पड़ा ।

मैंने मूकता तो अपनाई, पर "हिमालय" के हिमालयत्व में मैंने रन्ध्रों की कल्पना की थी । सोचा था कि वे मन से हार जायेंगे, पत्र लिखने को विवश हो जायेंगे । इस प्रकार मन को मुट्ठी में कर लेना क्या इतना सहज है !

पर उनके लिए तो सहज ही था ।

वे तो सच ही अपने मन को तपाने लगे, मूक रह कर शक्ति को मापने लगे । उनके पत्रों के न आने से व्याकुल, मेरे मन की भूमि प्यास से दरकने लगी ।

और तभी एक दिन-बुआ जी के पास अचानक ही अनुराग का छोटा सा पत्र कुशल-समाचार लिए पहुँचा । उसमें मेरे अर्थ स्याही की एक भी बूंद व्यय नहीं की गयी थी ।

मेरे मन ने कहा-

"चलो, उनकी कुशलता तो मिली । यही क्या कम है !" प्यास से विकल पृथ्वी पर आषाढ़ की मात्र एक बूँद !

इसके पश्चात् दिन बीतते गये, सप्ताह बीते, महीने बीते, वह वर्ष भी बीत गया । परीक्षायें पुनः आरम्भ हो गयीं-

हिमालय की कठिनता की भी क्या कोई सीमा थी !

"जानते थे-मेरी परीक्षा है-शुभ-कामनायें तक नहीं भेजी"-असन्तुष्ट मन ने कहा ।

पर क्या परीक्षा कभी भी किसी की शुभकामना की प्रतीक्षा करती है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परीक्षा आई और समाप्त हो गयी । मैंने कैसे-कैसे पढ़ा, कैसे पेपर्स किए यह तो मैं ही जानती थी ।

हर साल की भाँति पुनः ग्रीष्मावकाश आ गया । मैंने नानी जी को लिख दिया कि इस बार भी मैं नहीं आ पाऊँगी । एम. ए. का अन्तिम वर्ष है-बेहद पढ़ना है । नानी जी को क्या मालूम कि गत दो वर्षों से मुझ पर किसका, और कौन सा मंत्र चल गया है ! मैं किस नन्दन-वन में पहुँच गयी हूँ, और किस कल्पवृक्ष को पाने की कामना कर रही हूँ ।

अन्ततः अनुराग को मूकता के व्रत का उद्यापन करना ही पड़ा ।

एक दिन अचानक ही उनकी माँ का पत्र बुआ जी के पास आया । अनुराग का विवाह-सम्बन्ध लगभग निश्चित हो जाने की सूचना के रूप में । लड़की को देख कर, ठीक समझने पर, सम्पूर्ण सहमति देने का भार बुआ जी पर छोड़ा गया था । इस समाचार को बुआ जी मुझसे छिपा गयीं । पर अधिक दिन तक नहीं छिपा सकीं । समाचार आने के तीसरे ही दिन उनके पास अनुराग का भी पत्र आया । उसमें मेरे लिए भी एक नन्हा सा पत्र था । बुआ जी अविलम्ब वह पत्र मुझे थमा गयीं ।

आकाश फाड़कर आयी मन-भावनी, आकांक्षित वस्तु-मैंने एक ही सांस में पढ़ डाला-

नेह नौका इस उदधि में, डांड़ बिन खेते रहे ।
याद आने पर तुम्हारा, नाम हम लेते रहे ॥
अब आ पड़ी है भँवर में, तुम हो कि आशा साथ है ।
तारें कि इसको डूबने दें यह तुम्हारे हाथ है ॥

पढ़ते ही सारा उल्लास तिरोहित हो गया, मैं विचारों में डूबने-उतराने लगी । चिन्ता के घनघोर कृष्ण-वर्ण मेघों ने अचानक ही पता नहीं किस दिशा से आकर प्रातःकालीन सूर्य को ढँक लिया ।

''क्या बात हो गयी ? यह कैसा--भँवर ? और यह कैसी व्याकुल पुकार ?''

मैंने जैसे ही बुआ जी को अकेले पाया मैं उनके पास पहुँच गयी । उतरा हुआ, सूखा, मलिन मुख और डबडबाई आँखें लिए मैंने अनुराग का पत्र उनके हाथ में पकड़ा दिया । मैं न तो कुछ कह सकी और न पूछ ही सकी, निरुद्देश्य सी वहीं खड़ी रह गयी ।

बुआ जी ने पत्र खोला नहीं, कभी नहीं खोलती थीं । उन्होंने कभी भी हम लोगों की काव्य-पंक्तियों को पढ़ा नहीं, मैं जब कभी उनसे पढ़ने को कहती,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरा स्वर मन्द हो जाता, नवनीत–सी स्निग्ध लज्जा से फिसलते मेरे नेत्र ऊपर नहीं उठ पाते थे । आँखें झुकाए हुए ही मैं कहती–"बुआ जी पढ़ लीजिए ना ।"

"बिटिया । पढ़े वह, जो बिन पढ़े ही सब कुछ न पढ़ पाता हो । मैं तो बिन पढ़े ही तुम लोगों का सब कुछ पढ़ लेती हूँ । अपने प्यारे–प्यारे बच्चों के ये पत्र मैं पढ़ूँगी ।"

बुआ जी कहतीं, और पत्र मुझे लौटा देतीं ।

इस बार भी उन्होंने पत्र मुझे वापस दे दिया ।

करुणार्द्र, ममता से विगलित स्वर में बोलीं–"आ बिटिया आ, बैठ जा ।"

मेरे बैठ जाने पर मेरे पृष्ठ भाग पर अपनी हथेली रखते हुए कहने लगीं–"बिटिया ! एक समस्या आ पड़ी है । अनुराग के ब्याह को लेकर । पर तुझे कुछ भी चिन्ता नहीं करनी है । मैं सब संभाल लूँगी । मेरे रहते तुझे क्या चिन्ता । मैं अनुराग को पत्र लिखने जा रही हूँ । तू भी लिख कर ले आ । तुरन्त पोस्ट करा दूँगी ।"

मैं आँसू पोंछती लम्बे डग भरती हुई अपने कमरे में पहुँच गयी । अनुराग का पत्र सामने रखा । अश्रु प्रवाह को मैं किसी प्रकार भी नहीं रोक पाई ।

"अरे ! यह मेरे प्राण कैसे आकुल हो उठे हैं ! छिः, यह कैसी दुर्बलता ! यह कैसी हार ? यह कैसा रोना ?" मेरा हृदय कह उठा ।

"ठीक ही तो । रोना किसलिए ?" सोचते हुए मैंने अपने आँसू पोंछ डाले ।

उत्तर लिखा–

यह क्या ? हिमालय भूल बैठा शक्ति के सम्भार को ?
हँसते रहो, बस झेल लोगे, इस प्रथम तूफान को ॥
यह भँवर तो कुछ नहीं, तुम पार कर लोगे अभी ।
मैं साथ हूँ पतवार–सी, मत भूलना अब यह कभी ॥

मैंने अपनी ये पंक्तियाँ दो एक बार पढ़ीं, फिर तुरन्त ही बुआ जी को दे आई ।

लौटकर आई तो चित्त शान्त हो आया । उस रात बुआ जी ने मुझे अपने पास ही सुलाया । पता नहीं कितनी देर तक वे मेरा मुख अपनी छाती में छिपाए, मेरे सिर पर अपना हाथ रखे लेटी रहीं, अपनी योजनाएँ सुनाते हुए मुझे समझाती रहीं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब सबेरे मैं सोकर उठी तो चिन्ता और अवसाद के बादल छँट चुके थे–पुन: हल्की सूर्य की किरणें चमक उठी थीं ।

मेरे पत्र का उत्तर आने में बहुत दिन नहीं लगे ।

बुआ जी ने मुस्कराते हुए वह पत्र मुझे पकड़ा दिया–बिना पढ़े ही मैं समझ गयी कि बुआ जी के लिए जो पत्र इसी के साथ आया है उसमें शुभ समाचार ही होंगे ।

पत्र लिए, कम्पित हृदय मैंने अपने कक्ष में जा कर उसे पढ़ा । मेरे मन–प्राण को लुभा देने वाला संदेश–वाहक पत्र । पत्र क्या ! चार पंक्तियाँ–चारों दिशाओं से शीतल सुगन्धित पारिजात के पुष्पों की सी वर्षा करने वाली वे इनी–गिनी पंक्तियाँ मेरे लिए अनगिनत बन उठीं । लिखा था–

तुम शक्ति–रूपा प्राण हो, मेरे लिए संजीवनी ।
मैं जानता, पहचानता हूँ, बात की तुम हो धनी ॥
अब कहीं भूकम्प हो, तो भी रहूँगा अडिग मैं ।
हँसता रहूँगा आँधियों में, हो गया हूँ सजग मैं ॥

इसके बाद बुआ जी की बहिन का दूसरा पत्र आया, पत्र पाने के दूसरे ही दिन वे पराग को लेकर बहिन के यहाँ चली गयीं ।

वहाँ से पराग अकेला ही लौटा । उसने बताया कि बुआ जी सप्ताह भर बाद लौटेंगी ।

और सच ही बुआ जी एक सप्ताह बाद लौट आयीं ।

मैं तो जैसे ठगी सी खड़ी रह गयी ।

साथ आए थे अनुराग ।

बुआ जी ने आते ही कहा–"इलाहाबाद से अनू आ गया था, मुझे पहुँचाने चला आया, अकेली कैसे आती ? कोई तो पहुँचाने आता ही ।"

कोई क्या समझता ? पर मैं समझ गयी कि बुआ जी अनुराग को अवश्य ही किसी विशेष प्रयोजन से लाई हैं ।

अनुराग के आते ही जैसे घर–आँगन में गुलाल बिखर गया । मैं एक–एक पग सम्भाल कर रखती, इतनी स्निग्धता कि चलना ही कठिन हो गया ।

भाग्य की बात, या कि संयोग । फूफा जी घर में नहीं थे । वे काँग्रेस की बैठक में अहमदाबाद गये थे । बुआ जी विजयिनी होकर आई थीं । महा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्दण्ड, नखशिख सोने से लदी, श्याममूर्ति जिसकी लम्बाई चार फीट से अधिक नहीं थी, माता-पिता की, प्रभुता-प्राप्त-व्यापारी की, एक मात्र दुलारी पुत्री के बनते-बनाते नीड़ को नष्ट-भ्रष्ट करके आ गयी थीं । अनुराग की माँ से बोली थीं-"जीजी ! आप लोगों ने पता नहीं लगाया क्या ? सोना-चाँदी से लड़का ब्याहना है, या किसी कन्या से ? जीजा जी को भी पता नहीं चला ? ताज्जुब है ! लड़के की जिन्दगी ही चौपट हो जाती । भगवान् ने बड़ी रक्षा की ।"

"और भी दो तीन लड़कियाँ हैं, उन्हें देख लो । जो पसन्द हो उसी से तय कर लो, पर ब्याह तो इन्हीं चार-पाँच महीनों के भीतर करना है । अनू विदेश जाने वाला है । जाना तय हो गया है । उसका हाल तो तुम जानती ही हो । विदेश में कहीं कोई पसन्द कर ली, तो फिर कुछ करते-धरते नहीं बनेगा । मेरी कोख से सच ही हिमालय छोटा सा होकर जन्म पा गया है । क्या कहूँ । कुछ भी कहना बेकार है । और भी तो बच्चे हैं, मुझसे लड़ते हैं, झगड़ते हैं, पर यह अनू ? बस, एक बार बोलता है, फिर कुछ भी कहो, सुनता सब रहेगा, विरोध में एक शब्द नहीं बोलेगा, पर करेगा अपने मन की । इसलिए इसकी तो गाँठ किसी से बाँध ही देनी है, अभी सबेरा है, लड़का अभी अपने हाथ में है ।"

अनू की माँ ने इतना सब कह डाला ।

पर उनका लड़का क्या सच ही उनके हाथ में था !

पर देखिए, मनुष्य का भ्रम ही कभी-कभी किस प्रकार उसके अहं की ढाल बन जाता है !

बड़ी बहिन की बात सुनकर बुआ जी कदाचित् मन में हँसी होंगी, बोलीं-"क्या हमारा अनू ऐसा है जीजी ! वह किसी मेम को पसन्द नहीं करेगा । मेरी जिम्मेदारी रही । विदेश से वापस आने पर ही ब्याह करना ठीक रहेगा । इतने दिनों में मैं अच्छी सी लड़की खोज लूँगी, बहुत जल्दी में किया काम शैतान का काम होता है । जीजा जी को आने दो, शाम को उन्हीं से बात करूँगी । वे मेरी बात नहीं टालेंगे ।"

और शाम को सच ही बुआ जी ने अपने जीजा जी से बात की । अपनी इस साली की बात जीजा कभी नहीं टालते थे, उस दिन भी नहीं टाली, बस इतना ही बोले-"तुम्हारी बात तो मेरे लिए हमेशा ब्रह्म वाक्य रही है । आज भी है ।"

यह बात सुनकर पास बैठी पत्नी बोलीं-"अगर मेरी बात भी कहीं तुम्हारे लिए ब्रह्म-वाक्य होती, तो मेरे तो भाग्य ही जाग जाते ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"भाग्य तो तुम्हारे उसी दिन जाग गये थे जिस दिन मेरी गाँठ से बँधी तुम इस घर में चली आई थीं और तुरन्त ही महामहिषी बन बैठी थीं । तुम्हारी बात मेरे लिए ब्रह्म-वाक्य न सही वेद-वाक्य तो सदा ही रही है ।"

जीजा जी की इस विनोद-वार्ता से उस त्रिकोण में कलरव सी हँसी गूँज उठी थी ।

हँसी क्या थी, प्रच्छन्न रूप से बुआ जी की विजय पर कोमल शंखनाद था ।

सब जान-सुनकर अनुराग अपनी मौसी पर बलिहारी गये, और खुशी-खुशी उन्हें पहुँचाने चले आये ।

पर, क्या वे सच ही उन्हें पहुँचाने अपनी इच्छा से आये थे ?

नहीं । सच तो यह था कि वे बुआ जी द्वारा लाये गये थे । क्यों लाए गये ? इसके कारण की कल्पना अनुराग स्वप्न तक में नहीं कर सकते थे ।

अनुराग दूसरे ही दिन वापस जाने वाले थे । रात में सब के सो जाने पर बुआ जी उनके पास जाकर बोलीं-"अनू ! मैं तुझे आंधी-तूफान से बचा कर लाई हूँ । तुझे भी मेरी एक बात माननी होगी । बोल, मानेगा ?"

"जरूर मानूँगा । अपनी मौसी की बात जरूर मानूँगा, बताइए क्या करना है ?"

बुआ जी पल भर के लिए मौन हो गई थीं ।

तदुपरान्त गम्भीर मुद्रा में बोलीं-

"अनू ! तू विदेश जा रहा है । छह महीने के पहले घर आने का नहीं । बिटिया से मिल कर जा । लड़की क्या कभी मुँह खोलकर कुछ कह सकती है ! मैं तुम दोनों को ही जानती हूँ । कुछ भी अनुचित नहीं होगा ।"

इतना ही कह कर बुआ जी अनुराग की ओर देखने लगीं ।

और अनुराग !!

वे विजड़ित से धरती पर आँखें गड़ाये बैठे रहे ।

न तो "हाँ" न तो "ना" ।

वे कुछ भी कह सकने की स्थिति में थे ही कहाँ ?

अकस्मात् आ गयी धर्मसंकट की स्थिति ।

एक ओर तो "वचन" की दीवार मार्ग अंवरुद्ध किए थी, और दूसरी ओर "शील" की भित्ति में कोई रन्ध्र तक न था ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुराग के मर्यादित मौन में ही बुआ जी ने उत्तर पा लिया ।

घोर रात्रि, सर्वत्र सन्नाटा, बुआ जी मेरे पास आयीं । मैं न तो जाग रही थी और न सो रही थी । उन्होंने मुझे उठाया और अपने हाथों एक साफ धुली रंगीन साड़ी पहनाई । मेरे केश सँवारे, माथे पर रोली की बिन्दी लगाई । जब-जब मैं कुछ पूछना चाहती वे पहले ही कह देतीं-

"अरी ! रुक तो सही-अभी बताती हूँ ।"

इस प्रकार साधारण सी साज-सज्जा के उपरान्त, बुआ जी ने एक बार मुझे नख-शिख देखा, मेरे केशों पर प्यार की मोहर लगा कर बोलीं-"बिटिया ! घबराने की बात नहीं है । मैं कुछ दूर तुम लोगों के आसपास ही रहूँगी । अनू विदेश जा रहा है । जाने के पहले उससे कुछ बोल-बतला ले । यह जरूरी है । मैं तुझे उसी के पास ले जा रही हूँ ।"

सुनते ही मैं पसीने-पसीने हो गयी, दृष्टि बुआ जी के मुख पर टिक गयी, लगा उनके मन में कोई चोर है ।

"चल, चल, मैं तुझसे कोई गलत काम नहीं करा रही हूँ"-कह कर बुआ जी मेरा हाथ पकड़े अनुराग के कमरे की ओर बढ़ने लगी ।

"नानुकुर" की गुंजाइश ही कहाँ थी । मेरा मन और पैर दोनों ही पीछे लौटना चाहते थे । पर अग्रगामिनी बुआ जी का विरोध करने की शक्ति कहाँ से लाती ! आकाश में चन्द्र हँस रहा था, बस उसी का शान्त, शीतल प्रकाश मेरा अवलम्ब था, मेरी आँखों में आंसू छल-छला आए-

"मैं तो पत्नी बनने का स्वप्न देख रही थी-क्या अभिसारिका बन कर जाऊँगी ?"-मैंने मन ही मन कहा ।

इस आत्मकथन ने मेरे मन में विषाद भर दिया । वह विषाद ही आँखों को गीला किए जा रहा था ।

पर हिमालय तो शिव-पार्वती का निवास-स्थल है, वहाँ अभिसारिकाओं की छाया तक नहीं पहुँच पाती । कुछ ही देर में यह बात मेरी समझ में आ गयी कि मैं अभिसारिका नहीं, पावन पत्नी का स्थान, पत्नी के गौरवमय अधिकार को प्राप्त करने गयी थी ।

बुआ जी मेरे स्वभाव को अच्छी तरह जानती थीं, जानती थीं कि यदि वे मुझे अनुराग के कक्ष के द्वार तक ही पहुँचा कर लौट गयीं तो मैं रात भर द्वार पर खड़ी रह जाऊँगी, पर अन्दर नहीं जा पाऊँगी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और अनुराग ?

वे कभी भी अनधिकार चेष्टा नहीं करेंगे । एक कुमारी लड़की को, एकाकी रहते हुए, अपने कमरे में, वह भी अर्द्ध-रात्रि के समय, बुलाने का दुस्साहस नहीं कर पायेंगे–कैसे भी नहीं कर पायेंगे ।

इसीलिए बुआ जी मेरा हाथ पकड़े अनुराग के कमरे में प्रविष्ट हुईं, और मुझे कुर्सी पर बैठा कर चली गयीं ।

स्तब्ध, मूक, अनुराग खिड़की के सहारे खड़े, बुआ जी का जाना देखते रहे ।

बुआ जी ने यह कार्य क्या ठीक किया ?

शायद हाँ, शायद नहीं–

अनुराग मेरे पास आकर बोले–"यदि मैं सच कहूँ तो मेरा हृदय इसे ठीक नहीं समझ रहा है ।"

उनको पास आते देख कर ही मैं उठ खड़ी हुई । कुछ अटपटा सा लगा । उन्होंने घूमकर एक बार आकाश की ओर देखा फिर निस्संकोच मेरा हाथ पकड़, खिड़की के पास ले जाकर खड़ा कर दिया ।

मेरी ओर देखते हुए वे कुछ सोचते रहे, शायद अपने भावों को कविता के स्निग्ध-सूत्र में पिरो रहे थे । उन्हें पिरो लेने पर ही उन्होंने मानो अपने हृदय में सजी भावमाला को मेरे हृदय पर सजा कर मेरा वरण करते हुए मन्द मधुर स्वर में कहा–

आज से ही तुम हमारी, मन तुम्हीं में है रमा ।
आकाश में अब देख लो, साक्षी हमारा चन्द्रमा ॥
तुम हाथ दो मुझको शुभे, संकल्प लेता हूँ अभी ।
कुछ भी बने, कुछ भी मिटे, अब कर न छोड़ूँगा कभी ॥

"ऐसा संकल्प ! इतना साहस !"

चकित हो सोच ही रही थी कि उन्होंने मेरा हाथ पकड़ कर मुस्कराते हुए अपनी अँगूठी मेरी उँगली में पहना दी ।

अँगूठी ही तो थी । पर कसी हुई नहीं–मानो प्रथम मिलन में ही संकेत हो, प्रच्छन्न संकेत कि मैं बन्धन में विश्वास करता हूँ, पर वह बन्धन किसी को जकड़ ले, यह मैं पसन्द नहीं करता । यह विनोदमय संकेत उनका था या नहीं, मैं नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानती । किन्तु उनकी मुस्कराहट से मैं ऐसा ही समझी और साथ ही यह भी समझ गयी कि इस अकल्पित भेंट में वे मेरे नाप की अँगूठी कहाँ से जुटाते । अपनी ही अँगूठी पहना सकते थे । गन्धर्व-विवाह ही उस परिस्थिति में सम्भव था । मुझे याद आ गया, शायद उन्हें भी स्मरण हो आया हो, दुष्यन्त और शकुन्तला का गन्धर्व-विवाह । जिस विवाह से भरत जन्मे और जिनके नाम से अपना देश "भारत" प्रसिद्ध हो गया ।

इस विचार के आते ही मेरा सर्वांग सिहर उठा । सम्भवतः अनुराग ने उस सिहरन को अनुभव किया ।

क्या हुआ ? प्रश्न करते हुए उन्होंने बायें हाथ में से मेरा हाथ अपने दायें हाथ में ले लिया-बोले-"देखो, आकाश की ओर देखो-यह चन्द्रमा साक्षी है । आज से ही मैंने तुम्हें पत्नी रूप में स्वीकारा-ग्लानि से मुक्ति-कैसी पवित्र प्रसन्नता ! तुम्हें कुछ कहना है ?"

मैंने नकारात्मक सिर हिला दिया । रोकने पर भी हँसी मेरे नेत्रों से फूट पड़ी ।

वे भी मन्द-मन्द हँस दिए, बोले-"तुम गूँगी नहीं हो, चहकना जानती हो । कुछ मुझसे भी बोल दो न । कुछ "बिन कहा" इस समय तो कह दो ।"

मैंने यत्न किया फिर भी नहीं बोल पाई ।

किसी भी बात को विनोद का हलका रंग देने में अनुराग बड़े ही पटु थे । मुझे कुछ भी बोलता न देख कर स्वयं ही पुनः कहने लगे-

"छोटे से कागज पर, थोड़े से शब्दों में तो इतनी बड़ी बातें लिख देती हो कि उनको लेकर ग्रन्थ-रचना की जा सकती है । पर मैं समझ गया, मूकता में जो मुखरता है, वह वाङ् मय-वाणी में कहाँ ! मौन जितना कुछ कह जाता है, मुखरता कहाँ कह पाती है ! एक असीम है, दूसरा ससीम ।"

सुनते हुए मेरे मुख पर गहरी मुस्कराहट उतर आई, अनुराग ने उसे देख लिया, स्वयं भी हँस पड़े-"धन्य हुआ, चलो मुस्कराई तो ।" कहने के बाद वे भी मौन हो रहे ।

मैं उनके बोलने की प्रतीक्षा में थी-पर वे चुप ही रहे-शायद उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या बोला जाए ।

पल दो पल, कुछ पल यों ही बीत गये । वे अब भी मेरा हाथ पकड़े थे । मैंने एक बार भी हाथ छुड़ाने का यत्न नहीं किया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यापक मौन, सोचने को अधिक अवसर देता है ।

अचानक अनुराग ने मेरी हथेली अपने दोनों हाथों के मध्य लेकर दबाते हुए पूछा–"बात क्या है ? तुम्हारा हाथ इतना ठंडा कैसे हो रहा है ? घबड़ा रही हो क्या ?"

उस समय मैं तो नहीं घबड़ा रही थी, शायद वे ही घबड़ा रहे थे । हाथ उनके अति उष्ण हो उठे थे, मेरा हाथ शीतल प्रतीत नहीं होता तो और क्या प्रतीत होता !

मेरी हथेली उनकी दोनों हथेलियों में बन्द होने से स्वयं भी उष्ण हो आई–रोमांचकारी सुखद अनुभूति !

मेरी हथेली दबाए हुए ही वे पुनः बोले–"बहुत अच्छा हुआ । इन क्षणों की याद करके मैं विदेश में भी हँस लिया करूँगा । इन थोड़े से पलों ने मुझे खुशी का कितना बड़ा सम्बल दिया है ! मैं जानता हूँ, आज की रात न तो मैं सो पाऊँगा और न तुम ही सो पाओगी, फिर भी तुम्हें जाना तो पड़ेगा ही । सोने की कोशिश करना..................अच्छा जाओ ।"

उन्होंने मेरी हथेली माथे से लगाकर मुक्त कर दी, मेरी दृष्टि ऊपर उठ गयी, आन्तरिक सन्तोष से चमकता अनुराग का रागरंजित मुख मेरे नेत्रों की राह मन में उतर गया ।

हृदय की सारी शक्ति लगाकर मैं उनके पैरों पर झुकने लगी कि बीच में ही रोक ली गयी । उन्होंने हँस कर कहा–"मैंने इतना अधिक बोलने को कब कहा था ?"

मैं द्वार की ओर घूमी, किन्तु मन ने विरोध किया । विद्युत् गति से मुड़ कर मैंने निमिष मात्र में उनकी चरण–धूलि दोनों हाथों से ले माथे पर लगा ली और कमरे के बाहर आ गयी । वे स्तम्भित हो मुझे देखते रह गये ।

दूसरे ही दिन दोपहर की गाड़ी से अनुराग वापस चले गये । वे चले तो गये, किन्तु मन ही मन अपनी ढेर सारी सूक्ष्म विभूतियाँ मुझे दे गये । उन्हें पाकर जैसे मैं सब कुछ पा गयी ।

सब कुछ पा लेने में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि मैं स्वयं सब कुछ हार कर अपने को ही खो बैठी हूँ । मैंने विचारा और समझा कि इस भौतिक जगत् में संचरण करने वाला हमारा मन भौतिक स्थूल सुख की कामना करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का अभ्यस्त हो जाता है । इसी कारण मुझे सूनापन, रिक्तता और नवप्राप्त सौभाग्य की दूरी दु:खी करने लगी है ।

पुन: दिन पर दिन बीतने लगे, बुआ जी के पास अनुराग के पत्र आते रहे, केवल कुशल-समाचार पहुँचाने । मेरे लिए कुछ भी नहीं । रोज-रोज की प्रतीक्षा के बाद निराशा ही पल्ले पड़ती । मन में झल्लाहट भर आई, सोचा अब पत्र क्यों लिखने लगे ? पत्नी बना गये हैं न ! भाग कर जाऊँगी कहाँ, चारों ओर से रास्ते बन्द । निश्चिन्त होकर विदेश जाने की तैयारी कर रहे हैं । काव्य-रचना का रस भी लगता है सूख गया । आश्चर्य है, तभी एक घटना घटी और मेरा ध्यान उधर भटक गया ।

कलरव अनुराग के अन्तरंग मित्र थे । उदयपुर-निवासी, बड़े ही विनोदी, हास्य-प्रिय, स्पष्टवक्ता, संगीत के परम प्रेमी, निश्छल, पारदर्शी-जल जैसे हृदय वाले । बड़ी बुआ जी उनके बारे में बहुत कुछ जानती थीं । उन्हें पसन्द भी करती थीं । कलरव को पता चल गया था कि अनुराग अपनी मौसी के पास लखनऊ में आए हैं । बस, बड़े उत्साह से, मित्र-मिलन की उमंग से भरे हुए, बुआ जी के पास आ धमके । बुआ जी ने बड़े स्नेह से उन्हें ठहराया । अनुराग के परम मित्र हैं, जान कर हम तीनों ने भी कलरव का भरपूर आतिथ्य किया । पर जैसे ही उन्हें पता चला कि अनुराग तो अपने घर वापस लौट गये हैं, विदेश जाने वाले हैं, तो वे आग-बबूला हो उठे । बोले-''समझूँगा बच्चू को, साल भर से एक भी पत्र नहीं, मुझे कुछ पता ही नहीं । जा रहा है विदेश !''

बुआ जी के समझाने बुझाने पर वे किसी तरह से शान्त हुए ।

हम लोगों ने सोचा था कि कलरव दो एक दिन रह कर वापस चले जायेंगे । पर वे तो हमारे घर से चिपक से गये । हम लोगों की कक्षाएँ आरम्भ हो गयीं थीं, पर उन दिनों पढ़ाई-लिखाई एकदम ठप्प, कहीं भी आना-जाना बन्द ।

कलरव एक अमोघ अस्त्र का प्रयोग करते, सबके लिए, छोटा हो, बड़ा हो, कोई हो, सबके सामने साष्टांग दण्डवत् । जब तक उनकी बात मान नहीं ली जाती थी-वे धराशायी रहते । फूफा जी तक घर में बन्द से हो गये । कोई भी आए कहला देते-''पण्डित जी बाहर गये हैं, सप्ताह बाद लौटेंगे । कहीं से फोन आए दौड़ कर कलरव उठाते-तपाक से कहते-''हुजूर, मैं बोल रहा हूँ, पण्डित जी का नया नौकर-हीरामन तोता, घर में कोई नहीं । सब बाहर गये हैं ।''

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुन कर हम सभी हँसते–हँसते लोट–पोट हो जाते । दिन भर खाना–पीना, खेल–कूद और अभिनय ।

कलरव अभिनय में इतने दक्ष थे कि हम लोग अचम्भे में पड़ जाते । रोते हुए हँस देते । हँसते हुए रो देते । वीर–रस का अभिनय तो ऐसा करते कि बस पूछिए मत । हास्य में विदूषक की भाँति हँसते हुए अचानक रोने लगते, राम बन कर जंगल–जंगल सीता को ढूँढ़ते–फिरते, पेड़–पौधों की, सारे जंगल की कल्पना कर लेते कहते–"तुम देखीं सीता मृगनैनी"–और फिर कुछ ही देर में कृष्ण बन कर अर्जुन को गीता का उपदेश देने लगते । सात दिनों में शायद कलरव ने सात सौ तरह के पात्रों के अभिनय दिखाए होंगे । हर समय कोलाहल, व्यस्तता, जैसे तूफान, पर सबको हँसाने वाला । जिस दिन संगीत की धुन लगती तो विभिन्न राग उस एक मुख से वर्षाकालीन निर्झरी के समान फूट पड़ते । जब आलाप लेते तो हम सब चकित रह जाते । एक दिन हास्य–रस की कवितायें और चुटकुले सुनाने लगे तो सारा घर हँसते–हँसते बेहाल हो गया । पराग और मधु तो अपना पेट पकड़ लेते, उनकी आँखों से पानी झरने लगता ।

रात्रि के भोजन के पूर्व कलरव स्वयं कार चलाते, मधु और पराग को साथ लेते, सीधे चौक जाते, ढाई सेर मलाई या ढाई सेर रबड़ी, मलाई की गिलौरियाँ, पेठे के अंगूर आदि कितनी मिठाइयाँ सर्वाधिक प्रसिद्ध दुकान से ले आते । दोनों बुआ जी कितना कुछ कहतीं, मना करतीं, किन्तु कलरव के कलरव में वह सब खो कर रह जाता । सर्वाधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि मेरे फूफा जी भी इस सर्वथा नवीन, अति जीवन्त वातावरण में पूरा रस लेते रहे थे । कलरव के सारे कार्यक्रम नीचे बड़ी बैठक में ही होते थे । फूफा जी सोफे पर बैठते, उनके पार्श्व में बड़ी बुआ जी, और बुआ जी के पार्श्व में छोटी बुआ जी । हम लोग, घर के अन्य सदस्य कुर्सियों पर या फर्श पर आसीन रहते । केवल कलरव ही उत्पात मचाते रहते हों, ऐसी बात न थी । पराग, मधु, पड़ोस के अन्य बच्चे भी उन कार्यक्रमों में आशु अभिनेता बन जाते ।

प्रत्येक व्यक्ति में ऐसा कुछ भी छिपा रहता है जो अधिकतर प्रकाश में नहीं आ पाता । मधु कितनी अच्छी "मिमिक्री" कर लेता है, पराग घर की कटोरियों में जल भरकर, कितनी मधुर जलतरंग बजा लेता है, बड़ी बुआ जी भगौनों को उल्टा रख कर कितना बढ़िया तबला बजा सकती हैं–देखकर हम सभी हैरत में पड़ गये ।

कलरव की गूँज घर तक ही सीमित नहीं रही । लखनऊ से जाने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो दिन पूर्व उन्होंने अपने अमोघ अस्त्र का सहारा लिया–फूफा जी के सामने साष्टांग दण्डवत् । मलिहाबाद के आम के बगीचे में पिकनिक का प्रोग्राम ।

मलिहाबाद में एक "नवाब साहब" कलरव को पुत्रवत प्यार करते थे । कलरव वहाँ न जाते, कैसे सम्भव था ! हमलोगों को बिना बताए ही कलरव ने किसी के हाथ द्वारा एक पत्र उनके पास भेज दिया था । उसी में अन्य समाचारों के साथ ही लिख दिया था–"पिकनिक के लिए आ रहा हूँ । साथ में पचीस लोग ।" कार से कैसे काम चलता ! पता नहीं कैसे और कहाँ से कलरव एक नई बस किराए पर ले आए । पड़ोस के कुछ बच्चे और हम सब, सेवक–सेविकायें सारा घर, कोई भी नहीं छोड़ा गया । गेट में ताला बन्द कर, पड़ोस की पान की दुकान के नौकर को कलरव ने पाँच का नोट थमाते हुए कहा–"हमारे घर की पूरी चौकसी रखना ।"

पाँच रुपये का नोट जिसकी हथेली पर हो, वह भी उस समय ! कितने वर्ष पूर्व ! वे पाँच रुपये आज के कम से कम पाँच सौ रुपये के बराबर तो थे ही, उसने बड़ी मुस्तैदी से पूरी चौकसी की । उस नोट को पाकर जैसे वह बाल–सेवक कलरव के हाथों बिक गया ।

मलिहाबाद की वह पिकनिक, कल्पनातीत पिकनिक, मैं आज तक नहीं भूल पाई हूँ । वे नवाब साहब फूफा जी के परम मित्र निकले । देखते ही–"पण्डित जी आप" ! हमारे घर में तो "ईद आ गयी, जहे तकदीर"–फिर तो जो नवाबी शान–शौकत वाली महमाँनवाजी की कि पूछिए मत, नवाब साहब कह उठे थे–

"कभी हम आपको, कभी अपने घर को देखते हैं ।"

नवाबी शानशौकत की एक झलक मात्र थी उस पिकनिक में, फिर भी वह हम सबको चमत्कृत कर गयी ।

आम का वह बगीचा । बगीचा मात्र नहीं, आम्र–वन । नाम से तो आम्र–वन । वस्तुतः नवाब–जादियों का क्रीड़ांगन । नवाब की बेगमों की हवाखोरी का स्थल । नवाब के अन्तःपुर में खबर भिजवाई गयी, पण्डित जी सपरिवार आए हैं । सुनते ही बेगमें अपना ताम–झाम, लाव–लश्कर लेकर पहुँच गयीं । पर्दे से चारों ओर से ढँकी बेगमें जब कार से उतरीं तो दोनों ओर कनातें लग गयीं । उनके आने के पहले ही देखते–देखते तम्बू–कनातों से एक हाल सा बना दिया गया था । गाँव से मँगाकर चौकियाँ डाल दी गयीं थीं, और जीप में लद कर मखमली गद्दे, कीमख्वाब के पलँगपोश । ये सारी साजसज्जा देख कर हम लोग तो जैसे स्वप्नलोक में पहुँच गये ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काव्य में सुन्दर नारियों के, ललनाओं के, रमणियों के रूप के वर्णनों में मैंने पढ़ा था कि अमुक के मुख के सामने चन्द्र की चाँदनी धूमिल लगती, जगमग करते आभूषणों की, नेत्रों को चौंधिया देने वाली चमक के सामने सूर्य-रश्मियाँ मलिन पड़ जातीं । पढ़ कर सब अतिशयोक्ति लगा था, पर उस दिन समझ में आया कि कल्पना, सत्य का आधार लेकर ही रूप धरती है । मैंने देखा, जब बड़े नवाब की बेगमों ने मखमली, कारचोबी काम की चप्पलों से सजे अपने नाजुक पैर बाहर निकाले तो वे मेंहदी लगे कोमल पैर सच ही पृथ्वी पर खिले कमल से प्रतीत हुए । मैं तो देखती ही रह गयी ।

घोर पर्दे का चलन होने पर भी वहाँ कलरव को सर्वत्र जाने की छूट थी । बेगमों के ख्वाबगाह तक में कलरव के लिए प्रवेश-निषेध की तख्ती नहीं लगी थी । अत: वे सभी स्थानों पर स्वच्छंदता से विचरण करते । चारों ओर से आम्रवृक्षों की पंक्तियों से घिरे खुले स्थान पर आसमान की छत के नीचे पुरुषों के लिए विश्रामस्थल और बैठक सजाई गयी । वहीं मेरे फूफा जी का आतिथ्य स्वयं बड़े नवाब साहब ने किया ।

नवाबी संस्कृति की शालीनता और वैभव के दर्शन कर मुझे ऐसा लगा कि भारतीय संस्कृति और इस्लामी संस्कृति का मूल स्रोत एक ही रहा होगा, धारा अपने मूल रूप में एक ही रही होगी और धर्मान्धता के व्यूह ने उसे विभाजित कर दिया और इस प्रकार एक ही धारा भिन्न दिशाओं में भिन्न देशों की ओर बह गयी । मनुष्य ने उसके शुद्ध रूप को अपने अज्ञान जनित विभिन्न रंगों से रंग दिया ।

दोनों बुआ जी के सामने दोनों बेगमों ने जिस प्रकार झुक कर माथे से हाथ लगाकर स्नेहरंजित श्रद्धासिक्त आदरभाव व्यक्त किया, वह किस वन्दना या चरणस्पर्श से कम था ! उस झुकने में जो विनम्रता, श्रद्धा और आदर की भावना बिन बोले ही मधुसिक्त स्वर में बोल उठी थी, वह अनिर्वचनीय है । जिन बेगमों का मुख सूर्य और चन्द्र कठिनता से देख पाते थे, उन्हीं बेगमों के पास छोटे नवाब स्वयं पण्डित जी को ले गये ।

पण्डित जी को देखते ही बेगमें अपनी गोटे से सुसज्जित ओढ़नी से भली प्रकार सिर ढके खड़ी हो गयीं, झुकीं और पण्डित जी के पैरों के पास की भूमि हाथ से छू कर माथे से लगाते हुए बोलीं-

"जहे किस्मत !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फूफा जी के साथ बेगमों की कुछ क्षणों की भेंट ही भारतीय नारी की शालीनता कमनीयता और दीप्तिमय शील उजागर कर गयी ।

आम्रवन में ही भोजन बना । जनेऊधारी महाराजों ने शुद्ध पीतल के चमकते बर्तनों में नाना प्रकार के व्यंजन बनाए । हम सभी को भूमि पर ऊनी कालीन पर बैठा कर, सामने रखी आकर्षक, स्वच्छ, चाँदी-मढ़ी चौकियों पर केले के पत्तों में भोजन और मिट्टी के सुन्दर जलपात्रों में जल परोसा गया ।

दोनों बुआ जी के लिए चाँदी की चौकियाँ और चन्दन के पीढ़े लाए गये । एक ब्राह्मणी ने सुवर्णनिर्मित तश्तरियों में फल-मेवा फलाहार के रूप में चौकियों पर रख दिए और हाथ धुलाने के लिए जलादि लेकर आदरपूर्वक खड़ी हो गयीं । छोटी बेगम ने खड़ी होकर, पीढ़ों की ओर संकेत करते हुए बुआ जी लोगों से कहा-"कुछ लमहों के लिए इधर तशरीफ रखिए । हाथ पैर धोने के उपरान्त जब दोनों बुआ जी उन पीढ़ों पर जा बैठीं तो बड़ी बेगम ने स्वयं खड़ी होकर कहा-"नोश फरमाइए ।"

बड़ी बुआ जी ने हँस कर कहा-"बेगम बहिन ! फलाहार कराना है तो अपने हाथों परोसिए"-सुनते ही छोटी बुआ तो चौंक गयीं-और बड़ी बेगम की आँखों में आनन्दाश्रु भर आए । उन्होंने हाथ धोए और उसी तश्तरी में उन्हीं फलों को करीने से सजा कर बुआ जी के सामने पेश कर दिया ।

उसके बाद तो उस आम्र वन में जैसे प्रेम की फुहारें बरसती रहीं । कलरव की खुशी का तो कोई ठिकाना ही न था । सारे बच्चे, दिन भर खेलते रहे और मैं नवाबजादी सलमा के साथ, फूलों से लदी, सुरभि से गमकती लताओं से आच्छादित कुंज में संगमरमर के बने सिंहासन पर घंटों बैठी रह कर उससे गजलें सुनती रही । उसके प्रेमपरिपूर्ण आग्रह से मुझे भी कुछ स्वरचित कवितायें सुनानी पड़ीं । सलमा का व्यवहार ऐसा था जैसे वह मुझे चिरकाल से जानती ही नहीं, प्यार भी करती आई है ।

मलिहाबाद से चलते समय कलरव को छोड़ सभी के मुख पर उदासी छा गयी थी । नवाबी परिवार ने हमें जो बिदाई दी, वह भी असामान्य थी । भेंट में सभी को कुछ न कुछ दिया गया था और मुझे सलमा का नया सलमे-सितारे से जगर-मगर करता गरारा-कमीज और ओढ़नी ।

घर पहुँचते-पहुँचते रात के ग्यारह बज गये । भोजन की तो चिन्ता ही न थी । दिन भर कुछ न कुछ खाते ही बीता था । इसके अलावा शुद्ध खोए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के बने कलाकन्द से भरी ग्यारह मिट्टी की बड़ी-बड़ी हांडियाँ चुपचाप बड़े नवाब ने बस में रखवा दी थीं ।

हमने घर पहुँच कर देखा कि पाँच रुपये पाने वाला बालसेवक गेट पर बैठा हुआ ऊँघ रहा है । जागते ही उसने दौड़ कर तालियाँ लीं । गेट खोल कर मुख्य द्वार भी खोल दिया ।

''ये भी अपनी जेब में रख जो, तुम बहुत अच्छे लड़के हो''-कहने के साथ ही कलरव ने पाँच रुपये का एक और नोट उस बालसेवक को पकड़ा दिया । और बालसेवक इस अकल्पित दरियादिली से अभिभूत, कलरव के पैरों पर माथा रखने के बाद ही घर गया ।

सोचा था कि दूसरे दिन हम लोग मलिहाबाद की थकान दूर करेंगे, पर अपना वश ही क्या था ! दिन भर तो खाना-पीना, बात-चीत, मलिहाबाद के आतिथ्य की प्रशंसा, आम्रवन के सौन्दर्य की चर्चा और उसी के साथ नवाबी खानदान की शान-शौकत और तहजीब की तारीफ । वैभव और विनम्रता का कैसा आदर्श समन्वय ।

शाम होते ही कलरव को बनारसी-बाग घूमने की सनक सवार हो गयी । जाना ही पड़ा । रात को लौटते समय सब लोग थक कर चूर हो गये थे । पर कलरव ? उनके मुख पर थकान का नाम तक नहीं, यदि कुछ था तो वह आनन्द की आभा !

दूसरे दिन रात की गाड़ी से उन्हें घर वापस जाना था । अतः जाने के पूर्व दोपहर में वे अकेले ही अमीनाबांद चले गये,-कहते गये-''कुछ जरूरी सामान लेना है ''-

जरूरी सामान क्या लेना था ! तब पता चला, जब कलरव कुछ न कुछ उपहार हर एक के लिए एक झोले में भरे आ पहुँचे । पीछे-पीछे उनका बालसेवक एक पिंजर-बद्ध तोता लिए था ।

उन उपहारों में भी हँसाने वाली सामग्री ही अधिक थी । फूफा जी के लिए तोता लाया गया था । कहा-''मेरे जाने के बाद मौसा जी को सन्नाटा न लगे इसलिए उनके कमरे के बाहर यह पिंजड़ा टाँग जाऊँगा, यह तोता कुछ न कुछ बोलता रहेगा । इसे बोलना आता है । सिखाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी । मौसा जी के भक्त और शिष्यों का निरन्तर चलने वाला वाक्-चक्र भी इसे बहुत कुछ नया सिखा देगा ।''

मधु की लिखाई बहुत ही असन्तोषजनक थी सो उसके लिए साटे की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलम, बुदक्का और पाटी लाए थे, बोले--"सुन्दर अक्षर लिखने लगोगे तो बहुत बढ़िया इनाम दूँगा ।" मधु ने उस पर लिखने की हामी भर ली थी । पराग के लिए एक इंगलिश का शब्दकोष लाए थे, कहा-मैंने तुम्हारी कापी देखी थी, बहुत अशुद्धियाँ थीं, डिक्शनरी में देख लिया करो, इसको जब तब उठा कर पढ़ा भी करो, तुम्हारा स्वयं का शब्दकोष बढ़ेगा ।" नौकरों व बच्चों के लिए सीटियाँ, गुब्बारे, कुछ नये तरह के खिलौने और उपयोगी वस्तुयें । छोटी बुआ ज़ी के लिए "बीरबल की कहानियां" और बड़ी बुआ जी को काश्मीरी मधु से भरी एक सुन्दर सी शीशे की बोतल देते हुए बोले-"मौसी जी ! जो मिठास आप में मिली, वह भूलने की नहीं, क्या देता ? मधु को आपके पास भेज रहा हूँ, इसमें मिठास है, पर यह आपसे सीखेगा कि सच्ची मिठास क्या होती है ! और अन्त में मुझे "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" की पुस्तक भेंट की । कहा कुछ भी नहीं । क्यों नहीं कहा ? यह मैं कभी नहीं समझी, आज तक नहीं समझ पाई । वह प्रति आज भी मेरे पास सुरक्षित है । जब कभी दृष्टि उस पर पड़ जाती है, कानों में कलरव का "कलरव" गूँज उठता है ।

कलरव के चले जाने पर वैसा ही सन्नाटा, वैसी ही शिथिलता और थकान घर भर में व्याप्त हो गयी जैसी विवाह में कन्या के बिदा हो कर चले जाने पर होती है ।

उस सन्नाटे में मुझे याद आ गये अनुराग । लगा जैसे मैं कोई मधुर स्वप्न देखते हुए जाग पड़ी । मुझे आश्चर्य होने लगा कि मैं इतने दिनों तक अनुराग को भूले कैसे रही । निस्तब्धता और नीरवता में तनिक सी भी ध्वनि तीव्र प्रतीत होती है । अनुराग की स्मृति मुझे तीव्रतम प्रतीत होने लगी । घर का वातावरण तो दो ही चार दिनों में सामान्य हो गया, किन्तु मेरे चित्त की दशा असामान्य ही बनी रही ।

और तभी एक दिन बुआ जी ने मुझे पत्र दिया । अनुराग का पत्र-भावोद्रेक की स्थिति में ही मैंने पढ़ा-एक गीत-अजब सा गीत ।

गजब की बात सुनता हूँ, अजब सा राग सुनता हूँ ।
कि साथी और भी आया, कि साथी और भी आया ।
ये धरती पलट जाएगी, हिमालय लोट जाएगा ।
कि ऐसा कौन है आया ! कि ऐसा कौन है आया ?

मैंने दो-तीन बार बढ़ा, कुछ भी समझ में नहीं आया, तो बुआ जी के पास पहुँच गई ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे देखते ही वे हँस पड़ीं–"बैठ, चिट्ठी पढ़ कर परेशान हो गई न ! अरे ! यह तो हँसी की बात है । कलरव का तो कोई जवाब नहीं । घर वापस न जाकर आजकल वह अनुराग के पास चिपक गया है । वहाँ पहुँच कर उसने अनुराग के सामने तुम्हारी प्रशंसा के इतने पुल बाँधे कि अनुराग बिचारा उन पर चढ़ भी नहीं पाया । और पता है उसने अनुराग से क्या कहा ? कहा–"अनू ! तेरी मौसी जी की बिटिया तो मुझे बेहद भा गयी है, जैसे भी हो तू मेरी शादी उससे करा दे, क्या बताऊँ ! मुझे तो कालिदास की शकुन्तला जैसी लगती है, शकुन्तला जैसी ! तूने तो देखी है, देखी है न ? तुझे कैसी लगी ?"

आनन्दातिरेक से मौसी पलमात्र के लिए मौन रह कर अपनी हँसती आँखों से मुझे देखती रहीं । पुनः बोलीं–

"तुझे बताऊँ ! अनुराग ने क्या कहा ? कहा–"कालिदास की शकुन्तला उसके सामने क्या है ! कालिदास ने मौसी जी की बिटिया तो देखी नहीं–देखी होती तो शकुन्तला की जगह उसी का वर्णन करते । तू पागल हुआ है क्या ! क्या तू हर एक लड़की में शकुन्तला को ही ढूँढ़ा करता है ? बिटिया, बिटिया है, शकुन्तला नहीं । होश में आ जा । पर कलरव कहाँ होश में आया, बोला–शकुन्तला जैसी न सही, पर तू उससे मेरा ब्याह करा दे, जिन्दगी भर तेरा गुलाम बना रहूँगा ।"

बुआ जी ने पलँग के सिरहाने रखे एक पत्र को उठाया, मेरी ओर उस पत्र को बढ़ाते हुए कहा–"ले देख, पढ़ अनुराग ने क्या–क्या लिखा है । पूछा है कि क्या कलरव को सही बात बता दूँ ? अभी तो मैं उसके सामने मौन रह गया हूँ ।

उनके पास बैठे हुए ही मैंने अनुराग का पत्र पढ़ डाला । मन में हँसी फूट पड़ी ।

उसी रात मैंने मूक हँसी का आनन्द लेते हुए उत्तर लिखा–

नहीं तुम जानते उसको ? गजब की बात कहते हो !
तुम्हारा मित्र आया है, तुम्हारा मित्र आया है ॥
बता दो राग अपना तुम, सुना दो गीत अपना तुम ।
वही जो तुमने गाया है, वही जो तुमने गाया है ॥
न धरती पलट सकती है, हिमालय के चरणतल में ।
अमिट यह सत्य आया है, हमारे मन को भाया है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सदा की भाँति यह पत्र भी मैं बुआ जी को पकड़ा आई ।

अनुराग ने इस पत्र का उत्तर नहीं । अपने प्रश्न का उत्तर उन्होंने बुआ जी के पत्र में माँगा था, सो उत्तर मेरे पत्र में पहुँच गया था । मेरा अवचेतन मन अनुराग के उत्तर की आशा लगाए रहा, पर आशा पूरी नहीं हुई, और वे विदेश चले गये ।

अनुराग का राग और विराग मेरे लिए एक पहेली हो गयी । मैं उनको समझ नहीं पा रही थी । अन्ततः सोचा-''सच ही हिमालय हैं, उनकी ऊँचाई की ओर टकटकी लगाए रही तो बस इसी भर की हो रहूँगी । पढ़ाई-लिखाई चौपट हो जाएगी । सब लोग क्या कहेंगे !''

बस, यह सोचते ही पुरानी लगन लौट आई । पढ़ाई करने की लगन, प्रथम श्रेणी में आने का सुनाम पुनः प्राप्त करने की लगन । फिर भी अनुराग मन के आकाश पर छाए ही रहे, सावन की श्याम-वर्णी मेघ-घटाओं के समान, बरसते रहे, मधुसिक्त अनुभूतियों की वर्षा करते रहे । मेरे उत्साह-उमंग में बढ़ आई, अध्ययन की गति में तीव्रतर वेग भर गया ।

दिन महीनों में बदलते रहे, एक बार पुनः मेरी वार्षिक परीक्षा आ गयी और समाप्त हो गयी । मैं निश्चिन्त थी-किन्तु कदाचित् बुआ जी निश्चिन्त न थीं । मेरे चारों ओर मंडराती हुई उनकी ममता व्याकुल हो उठी । अनुराग के भारत लौटने का समय भी समीप आ रहा था । विदेश जा कर भी अनुराग ने मुझे कोई पत्र नहीं लिखा । बुआ जी को अपनी सकुशल पहुँच का समाचार देते हुए एक पत्र भेजा था, उसी में लिखा था-''मौसी जी ! आप ही के स्तम्भ के सहारे पनपती हुई दो लताएँ फूलों से भरकर एकाकार हो रही हैं, उनकी सुरक्षा का भार आप पर डाल कर मैं निश्चिन्त हूँ । बापू और अम्मां से कह दीजिएगा कि उनका बेटा, उनके ही शब्दों में हिमालय सा है-अडिग, अचल, अटल, बस ।''

बुआ जी इस पत्र को अनेक बार पढ़ चुकी थीं और मुझे भी पढ़ा चुकी थीं। सच बात तो यही थी कि यह पत्र हम दोनों के लिए आश्वासन था । किन्तु जब कई महीने व्यतीत हो गये और बुआ जी को अनुराग का दूसरा पत्र नहीं मिला तो मैं आश्वस्त रही पर वे अधीर हो उठीं ।

इसी अधीरता के मध्य पता नहीं क्या सोच विचार कर एक दिन बड़ी बुआ जी घर-गृहस्थी का पूरा भार मेरी छोटी बुआ जी पर डाल कर एक महीने के लिए अपनी बहिन के यहाँ चली गयीं । वहाँ जाकर उन्होंने क्या कहा, कैसे कहा, क्या किया, कौन-कौन से आँधी, बवंडर, तूफान झेले, मुझे कभी पता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं चल पाया । इतना ही पता चला कि उनकी बहिन का विरोध तीव्र था । उन्होंने बाधा डाली, वस्तुतः बाधा कोई न थी । फिर भी सबसे बड़ी बाधा जो थी, लड़के ने लड़की को स्वयं पसन्द कर लिया था । माँ से पूछा तक नहीं, बताया तक नहीं–माँ का अहं चोट खा गया, तिलमिला कर बिलबिला उठा, उसी दशा में माँ ने कुछ हंगामा किया ।

पर बुआ जी को शतशः प्रणाम । उन्होंने सब शान्त कर दिया ।

बुआ जी लौट आयीं । अपनी विजय के गर्व से मन ही मन अपना सिर ऊँचा किए । अब दूसरे पक्ष से टक्कर बाकी थी । पर बुआ जी में बला की हिम्मत थी । फूफा जी को भोजन कराते हुए इधर–उधर की चर्चा के मध्य ही वे कह उठीं–"लाला ! बिटिया अब बड़ी हुई, इस साल एम. ए. की पढ़ाई भी पूरी कर ली, कुछ ही दिनों में नतीजा भी निकल जाएगा । अब तो इसका ब्याह कर ही डालो ।"

फूफा जी ने बुआ जी की ओर देखा, मुस्कराए, बोले–"एक बार इतना अच्छा पात्र अपने द्वार पर आया, मगर तुम लोगों ने उसे "ऊँट" बता कर बिदा कर दिया । अब कोई दूसरा पात्र बताऊँगा तो उसे घोड़ा या गधा बता कर बिदा कर दोगी । तुम्हीं खोज दो न भाभी !"

बुआ जी को देर नहीं लगी–तपाक से बोलीं–"मैंने ढूँढ़ लिया है, तभी तो कह रही हूँ ।"

फूफा जी चौंक पड़े–बोले "ढूँढ़ लिया है ? कब ? कहाँ ढूँढ़ लिया ?"

बुआ जी ने झट से कहा–"अरे लाला ! अपना अनुराग है न ! तुम्हारे पास तो वह रह भी गया है, कुछ ही दिनों में विदेश से वापस आ रहा है । सुन्दर है न ! बिटिया और उसकी जोड़ी बहुत अच्छी रहेगी, उसी को ढूँढ़ लिया है । तुम्हें भी तो अच्छा लगता है । सुभाव और चलन भी उसका बड़ा भला है । मैं जीजी–जीजा से सारी बात तय कर आई हूँ । अब बस, तुम लोगों को "हाँ" करने भर की देर है ।"

सुन कर फूफा जी ने विस्मित मुद्रा में बुआ जी की ओर देखा । पलभर के लिए भोजन करना तक भूल गये । फिर कुछ पल मौन रह कर भोजन करते रहे । तदुपरान्त कुछ सोचकर कहने लगे–"लड़का तो बहुत शीलवान् लगता है । देखने–सुनने में तो अच्छा है ही, पढ़ा–लिखा है, सभी गुण हैं, किन्तु एक बाधा है, वे लोग तो विलायत पार्टी के हो गये हैं–अपनी बिटिया हम उन्हें कैसे दे सकेंगे ? इसके अलावा वह तुम्हारी अपनी बहिन का बेटा है, तुम्हारा अपना बेटा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसा, इधर बिटिया तो तुम्हारी ही हो गयी है । सम्बन्ध ठीक रहेगा ?''

बुआ जी किसी भी सोच-विचार में नहीं उलझीं, चट से बोल उठीं- ''बिलकुल ठीक रहेगा । इसमें हर्ज ही क्या है ? रह गयी विलायत पार्टी की बात, सो तुम ऐसा कह रहे हो ? गान्धी जी के भक्त होकर ? और तुम भी तो जेल जा चुके हो, एक बार नहीं, तीन बार, तुम्हारी तो जात ही चली गयी, बोलो, गयी कि नहीं ? सुन कर फूफा जी हँस पड़े । बोले-''मैं भूल गया था, भाभी ! मुझे माफ करो ।''

चलो माफ किया-बस, तुम लोग ''हाँ'' कर दो । बाकी सब मैं देख लूँगी ।'' कह कर मुस्कराती हुई फूफा जी की ओर देखती रहीं ।

''चलो ठीक है, मगर अपनी बिटिया से पूछ लेना । अनुराग उसे कहीं चूहा-बिल्ली तो नहीं लगता !'' उत्तर में बुआ जी जोर से हँस पड़ीं, साथ ही फूफा जी भी ।

रसोई के पास वाले कमरे से मैं सब सुन रही थी । फूफा जी की बात सुनकर जैसे मैं तत्क्षण चारों ओर से सुगन्धित पुष्प-वर्षा से ढँक गयी, मन और शरीर में क्या-क्या होने लगा ! समझ नहीं पाई । निःशब्द तीव्र गति से अपने कक्ष में आ गयी-पता नहीं क्यों, मेरा हृदय तेजी से धड़कने लगा ।

इसके बाद..............................अधिक दिन नहीं बीतने पाए थे कि अनुराग की माँ फल-मिठाई आदि के साथ मुझे देखने आ पहुँची । मुझे देखते ही मंत्रमुग्ध सी बोलीं-''ऐसी भोली ! ऐसी मन को मोहने वाली मैंने कभी सोचा भी न था । उन्होंने मुझे जबर्दस्ती अपनी गोद में बैठा कर मेरा मुँह मीठा कराया । मेरी उँगली में अँगूठी पहनाते हुए बोलीं-''बस, अब आज से यह लक्ष्मी हमारी हुई ।''

मुझे कुछ करना चाहिए था, पर कुछ नहीं कर पाई, मुख पर मुस्कराहट लिए मैं अपने कमरे में भाग आई ।

फिर तो जैसे समय में दौड़ की प्रतियोगिता आरम्भ हो गयी । क्षण, घंटे के, घंटे, प्रहर के, प्रहर दिन के, और दिन महीने के पीछे भाग लिए । इस भाग-दौड़ में वह दिन भी आ गया जब परीक्षा फल निकला, मैं और पराग दोनों ही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गये । हमारे घर में खुशी की वर्षा और बधाइयों का ताँता लग गया ।

ऐसे हर्षमय, जीवन्त वातावरण में ही अनुराग के भारत पहुँचने की निश्चित तिथि की सूचना भी मिली ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विवाह के सम्बन्ध में अनुराग को कुछ भी नहीं लिखा गया था ।

स्वदेश पहुँचते ही ऐसे अकल्पित, मंगलमय, मनभावन समाचार को पाकर वे कितने प्रसन्न होंगे ! इसकी परिकल्पना मेरी दिनचर्या में से बहुत सारा छीनने लगी ।

विदेश से वापस आते ही अनुराग को सब कुछ पता चला ।

उनके भावोद्रेक की पहली झाँकी उस पत्र में सजी जो उन्होंने बुआ जी को लिख भेजा ।

पत्र क्या था, बुआ जी पर भक्ति के सुमनों की बौछारें थीं जो बुआ जी को नख-शिख भिगोती हुई उनके अन्तःकरण के तल में जाकर शाश्वत मानसरोवर का रूप धर कर वहीं प्रवाहित होती रही ।

उन्हीं बौछारों की कुछ बूँदें अनुरागमयी हो, अनुराग की आन्तरिक प्रसन्नता के झोंके से एक नन्हे से पत्र के रूप में मेरे ऊपर भी पड़ गयी, पड़ी क्या, मेरे प्रति-रोम के नन्हें-नन्हें द्वार से प्रविष्ट हो लघुतम होती हुई भी अगाध सागर का रूप धर बैठी ।

उस दिन बुआ जी के हाथ से वह नन्हा पत्र लेते हुए मैं सच ही लाल हो गयी । बुआ जी उस लालिमा को, मेरे हाथ के मृदु कम्पन को लक्ष्य कर हँस पड़ीं, बोलीं-"अरे ! मुझसे शरमा गयी ? जा, जाकर देख क्या लिखा है ।"

पत्र ले जाकर मैं पलँग पर पड़ रही । मैंने उसे तुरन्त ही नहीं खोला, सोचा कि अब की बार तो उन्होंने सच ही पत्र लिखा होगा । मेरी प्रशंसनीय सफलता पर बधाई दी होगी ।

रस-विभोर मन ने स्वयं ही प्रश्न किया-"अच्छा, बताओ तो, उन्होंने क्या सम्बोधन लिखा होगा ? देखूँ तो तुम्हारी कल्पना, तुम्हारा अनुमान, कहाँ तक सही निकलता है ।"

उत्तर में ढेरों सम्बोधन, नव-नव सम्बोधन, कल्पना के अनन्त-कोष से भाग कर उपस्थित हो गये । पहचान में ही नहीं आया कि कौन सा सम्बोधन होगा-

"अच्छा ! देखूँ तो, क्या सम्बोधन लिखा है ?"

प्रश्न के साथ ही वह पत्र मैंने खोल लिया, लगा जैसे अगणित नक्षत्रों से जगमगाने वाले आकाश में केवल थोड़े से नक्षत्र पंक्तिबद्ध जगमगा रहे हैं-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्द्रमा और शेष नक्षत्रों का कहीं पता नहीं ।

एक सुन्दर से कागज के बीचोबीच मुक्ताक्षरों में दो पंक्तियाँ लिखी थीं–

मैंने देखा, कोई सम्बोधन नहीं, कोई हस्ताक्षर नहीं, मेरी कल्पना का सारा श्रम व्यर्थ । मुझे स्वयं अपनी मूर्खता पर हँसी आ गयी, सागर की गहराई से निःसृत मुक्ताओं से निर्मित कान्तिमान मात्र दो लड़ियाँ कह रही थीं–

चन्द्रकिरणों की कलम में, अमृत अब हम भर रहे ।
देता बधाई, लो सुनो, हैं प्रिय तुम्हारे आ रहे ।

पढ़ते ही मेरे हृदय पर किन दिव्य चन्द्र–किरणों की अनवरत वर्षा हो गयी, मैं स्वयं नहीं जान पाई । उन क्षणों में मैं बेसुध सी हो रही । सुध आने पर सोचा, बधाई किस बात की ? कुछ भी तो स्पष्ट नहीं किया । मेरी बुद्धि, मेरी जिज्ञासा पर हँसी, बोली–"इतनी स्पष्ट बात भी नहीं समझ सकीं ?" अरे ! बधाई है दो बातों के लिए"–अब तो समझीं ? मैं सच ही समझ गयी, और मन ही मन हँस पड़ी ।

राग–रंजित हृदयों को रात्रि से बड़ा मोह रहता है । मुझे भी हो रहा था, रात्रि में मैंने उत्तर लिखा–

संदेश पाकर यह तुम्हारा, धन्य मैं तो हो गयी ।
चरणतल में मैं तुम्हारे, चन्द्रिका सी बिछ गयी ॥
छबि ही तुम्हारी नयन–द्वय में, है अभी से बस गयी ।
अब समर्पित हो सकूँ, बस कामना इतनी रही ॥

पता नहीं इस बार बुआ जी ने क्या सोचा, वे स्वयं मेरे पास आईं, उत्तर माँग लिया, लेकर अपने पत्र में संलग्न कर तुरन्त ही पोस्ट करा दिया ।

इसके बाद आने वाले दिवस तो हरिणशावकों की भाँति कुलाचें भरते भागने लगे, और तभी एक शुभ दिन, मानव–जीवन में होने वाले मंगलमय महायज्ञ का समारम्भ शहनाई की मधुर–मधुर गूँज से हुआ ।

पाणिग्रहण–संस्कार के कुछ घंटे पूर्व अति जीवन्त आनन्द से थिरकते उल्लसित वातावरण में, नाना प्रकार की नेत्ररंजक साज–सज्जा के मध्य शोर मच गया–"बारात गृहद्वार पर पहुँच रही है ।"

चारों ओर भाग–दौड़ मच गई–"बारातियों के स्वागत में कोई त्रुटि न होने पावे"–एक सर्वव्यापी चिन्ता ।

जयमाल की तैयारी, सखियों का झुण्ड, मेहमानों की भीड़, बारात द्वार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर लगने में अधिक देर नहीं, मैं आकुल-व्याकुल-हृदया अपने चिरप्रतीक्षित प्रिय के स्वागत में लिखी कुछ पंक्तियाँ, कागज के एक छोटे से टुकड़े में, अपने धड़कते हुए वक्षस्थल में छिपाए चिन्ता में डूब रही थी कि मेरी ये पंक्तियाँ उन तक कैसे पहुँचें ?

कोई भी तो उपाय नहीं था ।

बुआ जी ढेरों कार्यों में फंसी, उलझीं, उनकी व्यस्तता का कोई ओर-छोर नहीं, बुद्धि ने धिक्कारा, कहा-''तुम इस समय यह पत्र बुआ जी को देने की बात सोचती हो ? छिः, कैसा चंचल, अधीर मन !''

अधिक देर तक ग्लानि नहीं झेलनी पड़ी, पता नहीं किस अदृश्य दिशा से कलरव कोलाहल मचाते मेरे कमरे में आ पहुँचे-निस्संकोच । बेधड़क मेरी सखियों से बोले-''प्लीज, कुछ मिनट मुझे चाहिए ।''

मेरी सखियाँ, चकित, अचम्भित एक दूसरे की ओर देखती हुई, उस कमरे से बाहर चली गईं । कलरव ने कपाट उढ़का दिए, मेरे पास ही बैठते हुए स्मित मुद्रा में बोले-''मुझे कभी भी कोई नहीं छका सका । तुमने छका दिया । कोई बात नहीं । बाद में समझूँगा । इस समय तो अमूल्य उपहार लाया हूँ-ठीक एक घंटे बाद तुम्हारा भी प्रत्युपहार लेने आऊँगा, तैयार रखना ।''

कलरव ने एक छोटा सा कागज मेरी मुट्ठी में दबा दिया, और जिस वेग से आए थे, उसी वेग से वापस भी चले गए ।

वह छोटा सा मुड़ा कागज मेरी मुट्ठी में पसीजने लगा ।

उधर अवसर नहीं था और इधर धैर्य नहीं था । पर अवसर सूझ ही गया । अचानक ही, ''मैं अभी आई'', कहते हुए मैंने स्नानागार में जाकर उसके कपाट अन्दर से बन्द कर लिए । जल्दी जल्दी सावधानी से स्वेदसिक्त कागज को खोल कर मैं पढ़ने लगी-

मैं आ गया, मैं आ गया, मैं आ गया मेरी प्रिया !
आज आपे में नहीं हूँ, क्या किया यह क्या किया ?
यह हिमालय आज चंचल, हो गया है किसलिए ?
जो धार मन की बह गयी, उसको बुलाने के लिए ?

अनजानी भावानुभूति से मेरा सर्वांग पुलक से भर गया ।

सोचा-''इस अकल्पित, उपलब्ध अमूल्य रत्न को कहाँ छिपाऊँ ?''

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिक सोचने के लिए मेरे पास समय ही कहाँ था !

मैंने झट से अपने नन्हें से रूमाल में वह रत्न लपेटा और अपने स्वागत पत्र के पास रख लिया। रुमाल में लिपटा, प्रिय का संदेश, उनका उपहार, हृदय से जा लगा, एक अपूर्व सिहरन ! हर्षोन्मत्त कम्पन !

अविलम्ब अपने को यथाशक्ति सहज बनाती हुई मैं स्नानागार के बाहर आ गयी।

मेरी सखियाँ पुनः मुझे सजाने में जुट गयीं। उन्होंने अधिक समय नहीं लिया और मुझे "जयमाल" के लिए तैयार कर दिया।

तभी पुनः आ गये कलरव लम्बे डग भरते हुए। उन्हें कहना नहीं पड़ा। उनको आते देख मेरी सखियाँ स्वतः बाहर चली गयीं। नख-शिख श्रृंगारपूर्ण अपनी छबि मैं दर्पण में देख चुकी थी। कलरव को देख नवीन संकोच ने मुझे धर दबाया। अंब की बार मेरे पत्र किसी प्रकार ऊपर नहीं उठे। मैंने बैठे ही बैठे चुपके से स्वागत-पत्र निकाल कर कलरव के सामने कर दिया।

कैसा आश्चर्य ! कलरव मौन रहे, पत्र लेकर चले गये। शायद वे मुझे और अधिक संकोच में नहीं डुबाना चाहते थे-"विनोद-प्रियता के साथ इनमें शालीनता भी है"-सोच कर मेरे मन ने एक अन्य ही प्रकार की प्रसन्नता का अनुभव किया। और तभी-"बारात आ गयी", "बारात आ गयी", की ध्वनि ने पता नहीं कितने मुखों से एक साथ निकल कर वायुमण्डल को गुंजायमान कर दिया। निमिष मात्र में फुर्र से उड़कर जाने वाली गौरैया-चिड़ियों के समूह के समान मेरी सखियों का दल वेग से बारात देखने के लिए भाग गया।

तरह-तरह के बैंड-बाजों की तीव्र मंगलध्वनि, चतुर्दिक् गूँजती, मेरे कानों के मार्ग से आकर मेरे सम्पूर्ण अन्तःकरण पर छा गयी।

अनायास ही कुछ क्षणों के लिए मुझे पूर्ण एकान्त मिला और उस निस्संग परिवेश में प्रिय के लिए कलरव के हाथ भेजे हुए स्वागत पत्र में अंकित पंक्तियाँ मेरे वसन्ताच्छादित अन्तस् में प्रतिध्वनित हो गूँजनें लगीं-

देवमन्दिर में हमारे, आज ही अभिषेक है।
टुनटुनाती घंटियों में, रव भरी नव गूँज है॥
वीणा मधुर मन की बजी, औ भक्ति के ही गीत हैं।
दूर थे अब आ मिलेंगे, जो परम प्रिय मीत हैं॥

इसके बाद तो अवकाश का एक भी पल शेष नहीं रहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बारात द्वार पर लग गयी । बाजों की दिगन्तगुंजायमान करती मंगल-ध्वनि, आतिशबाजी द्वारा आकाश की ओर फेंकी गयी रंग-बिरंगी, चित्र-विचित्र, प्रकाशपुंज समेटे पुष्प-वल्लरियाँ, शून्य में ही वंदनवारें सजाती जा रही थीं। लगता था कि अदृश्य नटखट वानरों के झुण्ड उन वंदनवारों को तोड़ते जा रहे थे । वंदनवारों के पश्चात् आतिशबाजी ने दपदप चमकते, नेत्रों को चौंधिया देने वाले नक्षत्रों को, जैसे अंजलियों में भर-भर आकाश से पृथ्वी पर बरसाना आरम्भ कर दिया । तीव्र आलोक से आकाश पर चित्रित रंगबिरंगी अल्पनाओं का सा प्रदर्शन चलचित्र सा आया और मनमोह कर चला गया ।

तभी बड़े वेग से आकर सखियों के झुण्ड ने मुझे घेर लिया, एक सखी ने ओढ़नी से मेरा मुख माथे तक ढँक दिया । सुरीले कण्ठों से निःसृत मंगल गीत, ध्वनि के मध्य वे मुझे द्वार पर ले गयीं । उसी समय पता नहीं किसके भ्रूसंकेत से प्रेरित हो मेरी छोटी बुआ ने मेरे मुख पर पूर्ण अवगुण्ठन डाल दिया । मेरी ओढ़नी का वस्त्र पारदर्शी था, प्रियदर्शन प्रयत्नसाध्य था । फिर भी मेरे नेत्र नहीं ही उठे, पता नहीं कौन सा भार था जो मेरे पलकों को झुकाए ही रहा ।

''जयमाल'' में मालाओं का आदान-प्रदान हुआ, मैं इतना ही जान सकी । यह नहीं जान पाई कि किसने मुझको माला पकड़ाई, किसने मेरी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाईं, किसके गले में माला डलवा दी, कुछ भी मेरी दृष्टि में नहीं आ सका । इतना ही नहीं, मैं यह भी नहीं देख पाई कि किसने मेरे गले में माला डाल दी । कैमरों की ''क्लिक'', उनका प्रकाश अवश्य गोचर हुआ । उस समय मेरी सखियों ने लाल गुलाब की मखमल सी चिकनी पंखुड़ियों की जो वर्षा की उसका पूरा-पूरा ज्ञान मुझे हुआ । उस वर्षा की कुछ पंखुड़ियाँ मेरे लहँगा और ओढ़नी के सलमा-सितारे से निर्मित फूलों में अटक गयीं ।

सखियों का वह झुण्ड ही मुझे मेरे कक्ष में वापस भी ले आया । फिर तो जैसे वे मुझे भूल ही बैठीं, अनुराग में ही रम गयीं, उन्हीं की प्रशंसा, उन्हीं का वर्णन, उन्हीं की सराहना ।

और तब ? कुछ घंटों के पश्चात्..........................

पाणिग्रहण, ग्रन्थिबन्धन, सप्तपदी, पवित्रपूजा, पवित्रसंकल्प । आराध्य की आराधना का श्रीगणेश, आदि सम्पन्न होने में आधी रात बीत गई । उस समय की अनुभूतियाँ ! क्या वे भी वाङ्मयी हो सकती हैं ? मैं सोचती हूँ-कभी नहीं । उनका माधुर्य ! ''गूंगे का गुड़'' ही कहा जा सकता है ।

उस समय मेरी कल्पना कुछ विशेष ही जीवन्त हो उठी, कहने लगी-''इस सारे संस्कार को एक दूसरा ही नाम देना चाहिए । पाणिग्रहण की अपेक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस पवित्र गठबन्धन में "समर्पण" ही अधिक महत्त्व रखता है । इसलिए "समर्पण-संस्कार" ही इसका अधिक उपयुक्त नाम हो सकता है । यदि उभय-पक्ष में परस्पर समर्पण नहीं हुआ, वर-वधू समर्पित और समर्पिता नहीं हो सके तो पाणिग्रहण का उद्देश्य ही पूर्ण नहीं होता । उसकी कुछ भी सार्थकता नहीं ।

आगे सोचने में बाधा पड़ गयी । तीव्र वेग से आती हुई बड़ी बुआ जी ने भोजन की थाली मेरे सामने रखते हुए कहा-"तेरी सखियाँ तो अनुराग को घेरे बैठी हैं, सबका खाना उसी जगह हो रहा है । चल, शुरू. कर, खा ले और कुछ देर सो ले । तुम दोनों तो इस युग के होते हुए भी पुरातन-पंथी निकले, पूरे दिन निराहार व्रत रह लिए । अनुराग तो अभी भी नहीं खा रहा था, पर तेरी सखियों से हार गया । अब खा रहा है ।"

उन्होंने कुछ ग्रास अपने ही हाथ से मुझे खिलाए और चली गयीं ।

बुआ जी के चले जाने पर मैं थोड़ा सा खाकर लेट रही । प्रतीत हुआ कि किसी जादूगर ने कुछ विचित्र मंत्र चला दिया है, मैं कुछ की कुछ हो गयी हूँ । स्वयं अपने को ही नहीं पहचान पा रही हूँ ।

शारीरिक थकान का अनुभव करते हुए मैं सोने का प्रयत्न करने लगी । पर क्या मैं सो सकी ? नहीं, कैसे भी नहीं, निस्संग होने पर मन की मुखरता का अन्त नहीं रहता । वह तो धाराप्रवाह कुछ-न-कुछ कहता ही रहता है । मेरा मन कुछ गूढ़, गम्भीर, चिन्तनशील और दार्शनिक हो कहने लगा-

"पाणिग्रहण और ग्रन्थिबन्धन, ये अजेय, अमोघ हैं ।
स्वार्थ को नि:स्वार्थ में परिणत करें दो मंत्र हैं ।"

"नि:स्वार्थ ध्यान में आते ही विचारधारा एक सर्वथा नवीन दिशा की ओर बढ़ गयी । बस, पता नहीं क्या हुआ । समझ नहीं पाई, जैसे सहसा पूर्व-राग का मदिर प्रभाव दूर हुआ और मैं चैतन्य हो गयी, भविष्य अपना परिचय देने लगा ।

अपने वर्तमान प्रियजनों से दूर, अनजान प्रदेश में, अनजान जनों के बीच जाकर उन्हीं को नितान्त अपना समझ कर उन्हीं के साथ रहना होगा । अनुराग के माता-पिता-सम्बन्धी कोई भी तो वहाँ निरन्तर नहीं रहते । नौकर-चाकरों को छोड़कर वहाँ घर में घर का कोई भी व्यक्ति सदा नहीं रहता । क्या होगा ? कैसे होगा ?"

भय-जनित सिहरन तन-मन को जड़ सा करने लगी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु उस जड़ता को उड़ जाना पड़ा, मित्र के जीवन के महोत्सव में व्याप्त उल्लास से उमगते कलरव, कोलाहल मचाते आ पहुँचे । बड़ी बुआ जी से बोले, "मौसी जी ! मैं घर वापस जा रहा हूँ, जरूरी काम है, एक घंटे बाद ही ट्रेन पकड़नी है, अपनी बिटिया, यानी मेरी नयी भाभी से मुझे मिला दीजिए, उन्हें बधाई दे दूँ ।"

अपने कमरे से मैंने सब सुना, उठ कर बैठ गयी । सिर ढकते हुए पल्ला कुछ नीचे तक आ गया । मांग में मोती भरे थे–बेंदी का चन्द्र पल्ले से आवृत हो जाने पर भी झलक रहा था । कलरव की वेगवती गति से मैं परिचित थी–अतः उसी मुद्रा में रहते हुए ही कलरव का सामना हो गया ।

निधड़क, मेरे पलँग पर, मेरे ही पार्श्व में बैठते हुए हास्यदीप्त मुख, कलरव विनोदिनी वाणी में कहने लगे–"वाह ! भाभी वाह ! क्या मनमोहिनी काव्य–रचना करती हो ? क्या बताऊँ ! देर से आया, बुकिंग हो चुकी थी, वेटिंग–लिस्ट तक में नाम नहीं लिखा पाया, बात बिगड़ चुकी थी । पता नहीं क्यों, हर काम में पिछड़ जाता हूँ । इस बार भी पिछड़ गया, पर यह पिछड़ना खल गया, कोई बात नहीं–जिन्दादिली में यह सब हँसी–हँसी में बीत जाता है, मेरी बधाई तुम दोनों को । अनुराग तो इस समय "कामरूप देश" में फँस गया है, ट्रेन का टाइम है । दुबारा बहुत जल्दी मिलूँगा–इस समय की विदा ।

"विदा" शब्द के साथ ही कलरव ने अचानक मेरी दाहिनी हथेली अपने हाथ में ले, माथे से लगा, धीरे से मुक्त की, और तीव्र वेग से कक्ष से बाहर निकल गये ।

यह सारा व्यापार इतनी शीघ्रता से हुआ कि मुझे सोचने–समझने का तनिक भी समय नहीं मिला । शून्य द्वार पर स्थिर हो रही मेरी दृष्टि में मन की यह बात अटक कर रह गयी–"कैसा अभिनव व्यक्तित्व है कलरव का !"

आगे का समय विभिन्न रीतियों के सम्पन्न होने में व्यतीत होता रहा । उस सारी व्यस्तता के मध्य भी मेरे हृदयाकाश में कलरव का "कलरव" गूँजता रहा । वह "कलरव" क्रमशः मन्द से मन्दतम होता हुआ उस समय पूर्णरूपेण विलीन हुआ जब विदा होने के उपरान्त मैं ट्रेन में बैठा दी गयी । ट्रेन छूटने में देर नहीं लगी ।

जनसंकुल नगर के पीछे छूट जाने पर अनुराग मेरे निरन्तर प्रवाहित होते अश्रुजल को अपने रूमाल से सुखाते हुए कहने लगे–"कोई इतना रोता है पगली !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

''पगली''–शब्द सुनते ही विस्मित मुस्कान मेरे अश्रुसिक्त नेत्रों को भरती हुई ओठों पर उतर आई । मैं बोल तो कुछ नहीं सकी किन्तु मन के आत्मकथन को नहीं रोक सकी । वह कह उठा–

''इनका भी जवाब नहीं । नवपरिणीता प्रिया पत्नी के लिए प्रथम सम्बोधन ! क्या ऐसे ही सम्बोधित किया जाता है !''

उस आत्मकथन में बाधा पड़ी । अनुराग कहने लगे–''देखो, अब मत रोना । रोना तो मैं किसी का भी नहीं सह पाता । फिर तुम्हारा रोना !''

उनकी वाणी से कुछ ऐसी स्निग्ध पीड़ा झाँक गयी कि मैंने अधोमुखी रहते हुए ही कह दिया–''अब नहीं रोऊँगी, सच, नहीं रोऊँगी ।''

''सच कहती हो सच ?'' कहते हुए वे एक ट्रंक पर मेरे पैरों के पास ही बैठ गये ।

''अरे !''–कहती हुई अनायास ही मैं उठकर खड़ी हो गयी । ऐसा करते समय मेरी प्रश्न करती हुई दृष्टि निमिषमात्र के लिए उनके मुख पर स्थिर हो रही । सन्तोष, तृप्ति और हर्ष से दमकता उनका मुख मेरे नेत्रों की राह मेरे हृदय में उतर गया–कैसी–कैसी तो शरीर–मात्र को नहीं, मन को भी पुलक से भरने वाली सुखानुभूति ! आत्मसुख के उन क्षणों में मैं आत्मविस्मृत सी खड़ी रह गयी ।

अनुराग ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा, स्वयं बर्थ पर बैठते हुए मुझे भी अपने पास बैठाते हुए कहने लगे–''तुम मेरी ओर देखोगी नहीं तो मैं फिर से नीचे बैठ जाऊँगा । यह भी कोई बात हुई !–देखो मेरी ओर देखो ।''

इस मधुमिश्रित आदेश को मैं अनसुना नहीं कर पाई, मेरी दृष्टि स्वतः ऊपर उठ गयी, सुदर्शन मुख की कान्ति मेरे नेत्रों को उजागर कर ही रही थी कि उद्दामगति पवन, झंझावात के सदृश खिड़की के उन्मुक्त मार्ग से प्रवेश कर, कान्त–कामनाओं के नव–नव किशलयों से मण्डित, प्रस्फुटित–प्राय समर्पण की कलिकाओं से आपूरित, सद्यविकसित भावनाओं के सुमन–गुच्छों के भार से अवनत, अनुरागरंजित सुमनोहर सुगन्धि से व्याप्त मधु–कुंज सदृश कूपे में अन्धड़ उठाने लगा ।

तड़ित् वेग से लपक कर अनुराग ने शीशा गिरा दिया, मधुप्रवाह की मनोरम गति पुनः सहज हो आई ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे पार्श्व में बैठते हुए अनुराग कुछ गम्भीर हो आए, मेरी हथेली अपनी हथेलियों के मध्य दबाते हुए बोले–"कितने ही विवाहों में सम्मिलित हो चुका हूँ, किन्तु लड़की की बिदा पहली बार देखी, क्या इतना रोना–धोना मचाने के लिए ही माता–पिता अपनी पुत्री के हाथ पीले करने को इतने व्याकुल रहते हैं ? उसके विवाह के लिए वे क्या–क्या कष्ट नहीं उठाते ! और जब पुत्री ससुराल जाने लगती है तो उनका अश्रुप्रवाह सारे बाँधों को तोड़कर दर्शकों के हृदयों को दहला देता है । मैं तो समझ ही नहीं पा रहा था कि कैसे, और क्या करूँ ! और तुम ! तुम तो जैसे अपने होश में ही नहीं थी.................. ...."

वे एकटक मेरी ओर देखे जा रहे थे, उनकी आँखों में करुणा की नींव पर विनोद और आनन्द से निर्मित राजसी प्रासाद का शिखर सा चमक उठा था, यह कैसा इन्द्रजाल !

मुझे हँसी आने लगी, पर वे कहे जा रहे थे, सोच रहा हूँ कि वह अश्रुप्रवाह पार्वत्यप्रदेश के वर्षाकालीन नव–नव निर्झरों के समान अल्पकालीन होता है, कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता"–कह कर वे पल भर के लिए मौन हो रहे । पुनः बोले–"मैं भी क्या नीरस प्रसंग ले बैठा ! आराम से बैठो–ऐसे सिकुड़ी, सिमटी, कब तक बैठी रहोगी ? उठो, हाथ मुँह धो लो । यह भारी भरकम चमचम करते कपड़े बदल कर हलके–फुलके पहनो, और मेरे लिए भी दूसरा कुरता पैजामा निकाल दो ।"

उन्होंने अपने सूटकेस की ताली मेरी ओर बढ़ा दी । मैंने पहले उन्हीं का सूटकेस खोला, खद्दर का पैजामा और एक महीन खादी सिल्क का कुरता निकाला । देखते ही एकदम फूल से खिलते हुए हँस पड़े–"सिल्क का कुरता ! अच्छा, समझ गया"–कहने के साथ ही उन्होंने वस्त्र पकड़े और बाथरूम की ओर बढ़ गये ।

अपने वस्त्र निकाल कर मैं सूटकेस बन्द भी नहीं कर पाई थी कि वे बाहर आ गये । मैंने चौंकते हुए उनकी ओर देखा, उनका सद्यजलधौतमुख कुछ अधिक ही अरुण हो चमक रहा था । मुझे इस प्रकार अपनी ओर देखते हुए देख कर प्रसन्न हो उठे–"जब तुम मेरी ओर देखती हो तो !.................. पूरी बात नहीं कहूँगा–"अनकहा" और "बिनकहा" ही मधुरतम होता है ।"

मैं खुलकर हँस तो नहीं सकी, किन्तु मुस्कराहट को रोक भी नहीं पाई ।

उसी मुस्कराहट को साथ लिए मैं वस्त्र बदलने चली गई ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब मैं बाथरूम से बाहर आई तो "कूपे" का रूप ही बदल गया था। सारा सामान ऐसे रख दिया गया था कि पता नहीं चल रहा था कि किधर गया, नीचे की बर्थ पर एक सुन्दर पलँगपोश बिछा था।

"आओ, बैठो, अब हम–तुम इतमीनान से बातचीत करेंगे।"–कहते हुए अनुराग ने मुझे खिड़की के पास बैठा दिया और स्वयं मेरी गोद में सिर रख कर लेट रहे। कुछ देर वे मेरा मुख देखते रहे, फिर मेरी हथेलियाँ अपने नेत्रों पर दबा कर रखे हुए वे मौन हो रहे। अधिक कुछ तो नहीं किन्तु मैं इतना समझ गयी कि उन्हें एक नवीन अपरिचित आनन्द सुख का अनुभव हो रहा है।

वातावरण अधिक देर तक मौन नहीं रहा, उन्होंने मेरी हथेलियाँ आँखों से हटा कर अपने हृदय पर धीरे से दबा लीं, मुझे कुछ झुक जाना पड़ा। किन्तु इस मुद्रा से मुझे तुरन्त ही मुक्ति मिल गयी, सहसा ही वे उठकर बैठ गये–"मैं तुम्हारी बात नहीं जानता पर अपनी अनुभूति बता रहा हूँ–मेरे हृदय में कैसी विचित्र जीवन्तता है ! मधुर सुखविभोर कर देने वाली, प्रिय की दिशा में वेग से भागती हुई लहरों की चंचलता है। स्थिरता में घ़ोर अस्थिरता और मूकता में कलकल–ध्वनि–मयी मुखरता है। मैं क्या अनुभव कर रहा हूँ ! ऐसे अनोखे आनन्द की तो मैं कल्पना तक नहीं कर सकता था। कैसे बताऊँ ? शब्द नहीं, क्या तुम इस अनकहे को भी समझ लोगी ? बता सकती हो कि नदी की धारा इतने वेग से प्रियतम सागर की ओर क्यों दौड़ती है ?"

अपने प्रश्न का उत्तर पाने की इच्छा से वे मृदु–मुस्कान भरी दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए हँस पड़े।

उन्हें हँसता देख कर मेरी हँसी भी मुखर होने की इच्छा करने लगी किन्तु वह ऐसा कर नहीं सकी, वह मौन रह कर ही मेरे मुख पर पूर्णरूपेण छा गयी, मेरी आँखों से उनके प्रश्न का उत्तर झाँकने लगा था, मैंने स्वीकारात्मक सिर हिला दिया।

अनुराग कुछ सोचने लगे। मुझे भय हुआ कि कहीं मेरा मौन उन्हें रुष्ट तो नहीं कर गया, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। गम्भीरता की एक कोमल अस्पष्ट छाप उनके मुख पर व्याप्त हो गई, कहने लगे।

रागोन्मुखी योगसाधना का अजेय ब्रह्मास्त्र विवाह !

विवाह की रात !

विवाह की रात ! जंत्र–तंत्र जगाने वाली, वशीकरण का मंत्र फूँक देने वाली। रात्रि के पहले, कलरव के हाथों भेजा हुआ तुम्हारा उपहार !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलरव माना नहीं, उसने पढ़ ही लिया । मेरा अभिन्न मित्र होने का दावा वह सदा करता आया है, मैं कैसे मना करता ? और मना भी करता तो क्या वह मानता ? तुम्हारी उन चार पंक्तियों के एक एक शब्द को पढ़ता, झूमने लगता, जैसे रस के सागर में डुबकी लगा रहा हो । और अन्त में मालूम है उसने क्या कहा ? कहने लगा–

"मैं तो भाभी का दासानुदास हो गया । अरे अनू ! तू तो राग की भौतिक भूमि में नहीं, राग की दिव्य–भूमि में प्रवेश करने जा रहा है"–और भी पता नहीं क्या–क्या कहता रहा ! तुम्हारे प्रति उसकी भक्ति का ओर–छोर नहीं । दिखाऊँ तुम्हें वह कागज का नन्हा सा टुकड़ा जो सागर में एक नन्हे स्नेह–बूँद के सदृश चतुर्दिक फैलता आ रहा है"–

कहने के साथ ही वे एक झटके से उठ गये । अटैची से निकाल वह कागज अविलम्ब उन्होंने मेरी गोद में रख दिया ।

वही कागज, जिसने मेरे अन्तस् की तीव्रतम धड़कनें सुनी थीं, जिसने मेरे मानस–मन्दिर में प्रवेश के समय मेरे परम प्रिय के चरणों में अर्घ्यदान दिया था । उस कागज को देखते हुए अनगिनत भाव मेरे मन में मुखर होने के लिए चंचल होने लगे, पुष्प की पंखुरियों के समान खिलने लगे–फिर भी मैं चुप ही रह गयी । आश्चर्य में पगा, विस्मय से भरा मेरा मन स्वयं मुझसे प्रश्न कर रहा था–"ये इतना कुछ बोल लेते हैं ?"

उस दिन मेरी समझ में आया, मैंने यह रहस्य जाना कि क्यों अटल, अचल, गगनस्पर्शी हिमालय से अगणित धारायें एक विशेष ऋतु में झरझरा पड़ती हैं ।

अभी तक मैं अधिकतर मौन ही रह गयी थी । मेरी लज्जा और संकोच मेरे आश्चर्य, हर्ष, उल्लास, अकल्पित उपलब्धि–जनित आनन्द पर बाँध लगाये थे । उन्हें वाणी तक पहुँचने ही नहीं दे रहे थे । मैं बहुत कुछ कहना चाह रही थी पर किसी भी तरह नहीं कह पा रही थी ।

अपनी किशोरावस्था में मैं कभी भी यह नहीं सोच सकी कि गगनविहारी, प्रियदर्शन, जीवनदायी मेघ पृथ्वी पर भी उतर आते हैं, घर–आँगन को रससिक्त कर जाते हैं । पर गत वर्ष जब दो दिनों के लिए सहपाठिनियों के साथ मैं मसूरी गयी तो वहाँ के अनमोल प्राकृतिक वैभव को देख कर चकित हो रही थी–कैसे सुन्दर, पारदर्शी, रूई से हल्के, कुछ श्वेत, कुछ भूरे, कोमल नेत्ररंजक गगन–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विहारी मेघ हमारी कॉटेज में भर गये थे । उसका अन्तर तक रससिक्त कर गये थे ।

मेरे जीवन में वही अकल्पित घटित हुआ ।

जीवनदायी गगनविहारी मेघ के सदृश मेरे प्रिय, मेरे मन-प्राण को, रोम-रोम को रस-सिक्त कर रहे थे । सम्भवतः मेरे मौन रहने का एक यह भी कारण था । सच ही तो । वैसी भावमय आत्मविस्मृति की दशा में मैं क्या बोलती ? कैसे बोलती ?

मेरे मौन की उन पर कुछ भी विषम प्रतिक्रिया नहीं हुई, पुनः कहने लगे- "सोचता रहा कि जीवन के इस मंगलपर्व पर तुम्हें क्या उपहार दूँ ? कुछ भी समझ में नहीं आया । मेरा सर्वस्व तो तुम्हारा ही हो गया था । जो दे चुका था उसे ही पुनः उठा कर देने का महत्त्व ही क्या होता ! बस, कुछ अल्प नवसर्जना कर, उपहार देने का संकल्प किया । आज मैं स्वयं ही उसे तुम्हें सुनाऊँगा, स्वयं तुम्हें दूँगा, अपने हाथों तुम्हें, अपनी परम............।"

कहते हुए उनकी मृदु मुस्कान उन्हें मौन बना गयी । पर वह मौन टिक नहीं सका । जलधारा पर गिरी कागज की नाव के सदृश बहता हुआ पता नहीं किस दिशा में जाकर विलुप्त हो गया ।

उन्होंने अपनी अटैची से एक सुन्दर सा, सु-मनोहर, वातावरण में सुगन्धि बिखेरता, छोटा सा श्वेत कार्ड निकाला, एक बार सरसरी निगाह से स्वयं पढ़ा और मुझे पकड़ा दिया ।

अपनी दाहिनी भुजा मेरे गले में डाल कर, आनन्द से खिली दृष्टि से मेरी ओर देख, वे अपनी नवसर्जना मुझे सुनाने लगे । उन क्षणों में मैंने विश्वास किया कि भावुक-हृदय मानव की दृष्टि में, वाणी से कहीं अधिक भावाभिव्यक्ति की शक्ति है । उस समय वाणी की अपेक्षा उनकी दृष्टि ही अधिक मुखर हो उठी थी ।

मैंने सुना-

सच-सच कहूँ ? जानो सही, पहचान लो, मैं कौन हूँ ?
एक नन्हें से हृदय का, मैं अमिट विश्वास हूँ ॥
नन्हा हृदय कोमल बड़ा, रहकर वहाँ मैं सर्वदा ।
नव-नव रसीले सुमन ही, उसमें बिछाऊँगा सदा ॥

पावन सर्जना की गहराई में डूबता मेरा मन अपने प्रिय के प्रति श्रद्धा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से झुक उनके चरणों में भक्ति के पुष्प चढ़ाने लगा । ऐसी मनःस्थिति में पता नहीं कब मेरा मस्तक झुकते-झुकते उनके वक्ष पर टिक गया । श्रद्धा-भक्ति-प्रेम-समन्वित भावना में डूबते हुए मेरे नेत्र मूँद गये । तभी उनका प्रश्न-"पसन्द आया मेरा उपहार ?"-सुनते ही मेरी आँखें खुल कर उनके मुख पर चली गयीं, कितनी मृदुता ! कितनी सात्त्विकता ! कितनी पवित्रता ! कितनी सौम्यता ! विराज रही थी उस पर !

मेरी दृष्टि तुरन्त ही नीचे झुक गयी । बड़ी तत्परता से "जी" कहते हुए मैं कुछ सीधी होकर बैठ गयी । अनजान में ही मैंने वह कार्ड अपने वक्षस्थल पर रख लिया, पता नहीं उन्होंने क्या समझा, उल्लसित स्वर में बोले-

"पाणिनि के सूत्रों की ख्याति का पूरा रहस्य तुम्हारी वाणी द्वारा समझा जा सकता है, कोई बात नहीं, वह दिन दूर नहीं जब तुम स्वयं अपने सूत्रों की व्याख्या करने लगोगी ।"

उनकी इस बात का उत्तर देने को मैं आकुल हो उठी, किन्तु कोई भी उपयुक्त उत्तर समझ में नहीं आया । मैं उठ जाना चाहती थी । पर उठ नहीं सकी । उनकी समीपता बड़ी सुखद थी, किन्तु संकोच मुझे बेचैन किए था । उठने का कोई बहाना नहीं सूझ रहा था-तभी-"एक मिनट" कहते हुए वे स्वयं उठ गये । टोकरी से अंगूर निकाले, धोए और कुछ मेरे मुख में देते हुए बोले-"बस, तुम्हारी जिन्दगी ऐसी ही मीठी, रस-भरी और स्निग्ध रहे । मेरी कामना है ।"

मैंने सुना, सुना क्या ! रस में डूब गयी । बहुत कुछ कहने को व्याकुल हो उठी । मन हुआ कि उनके हाथ से लेकर कुछ अंगूर मैं भी उनके मुख में दे दूँ-पर कुछ भी नहीं कह पाई, कुछ भी तो नहीं कर पाई, मुझे प्रसाद जी की "लज्जा" स्मरण हो आई ।

मैंने अचानक अपना मुख उनकी गोद में छिपा लिया ।

उनकी हथेली मेरे केशों पर आ गई । मेरे सिर पर अपना मुख रखते हुए वे बड़े दुलार से बोले-"अच्छा, अब भोजन कर लिया जाए, तब आराम करें ।"

मैं तड़ित्-वेग से उठ बैठी । बर्थ के सामने एक छोटा ट्रंक घसीट कर मैंने उस पर मेजपोश बिछाया और टिफिन कैरियर से भोजन निकाल कर उस पर सजा दिया । पेय-जल का पूरा प्रबन्ध कर एक छोटी तौलिया हाथ में ले मैं खड़ी हो गयी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"अच्छा ! तो अब हाथ धो लूँ ? तुम्हारा बिनकहा समझने का मुझे काफी अभ्यास हो चुका है"–कहते हुए उन्होंने तौलिया मेरे हाथ से ले ली ।

उनकी शिष्ट, संयत, विनोद–वाणी मेरी हँसी को झंकृत कर गयी ।

उस दिन भोजन तो मैंनें नाम–मात्र के लिए किया, किन्तु आनन्द की अनुभूति इतनी अधिक थी कि कुछ कहने की नहीं ।

अनुराग ने नीचे की बर्थ पर मेरा बिछावन ठीक से बिछ दिया । अपना बिछावन ऊपर की बर्थ पर बिछ कर बोले–"तुम्हें पाने के लिए गत रात्रि को जागरण किया था । उससे नींद के साथ अन्याय हो गया, उसे सन्तुष्ट करना है, तुम इस बर्थ पर सो लो । मैं ऊपर की बर्थ पर सो लेता हूँ, कुछ भी जरूरत हो तो मुझे जगा लेना । संकोच नहीं करना ।"

तभी मेरा ध्यान गया कि वे सोने का प्रबन्ध करके मेरी बर्थ पर बैठ कर एक झाड़न से अपने पैर पोंछ रहे हैं । अब मेरा साहस विजयी हुआ । मैंने अचानक वह झाड़न उनके हाथ से ले लिया, नीचे बैठ कर उनके पैर पोंछने लगी–"अरे ! अरे ! यह काम तुम्हारा नहीं है"–कहते हुए वे झाड़न मेरे हाथ से लेने लगे । मैंने लेने नहीं दिया, सिर झुकाए हुए ही बोली–

"इस खुशी से वंचित मत कीजिए, यह अधिकार मेरा है, केवल मेरा ।"

सुनते ही उनका हाथ पीछे लौट गया । वे बोले कुछ नहीं ।

मैं उनके पैर पोंछती रही–संगमरमर जैसे श्वेत युगलचरण–देख–देख कर मुग्ध होती रही ।

जब उठी तो वे अति मन्द, स्नेह–विगलित स्वर में बोले–"इतना सारा सुख मुझे यों चुप रह कर ही दे डालोगी ?"

उनके प्रश्न के उत्तर में अनायास ही मेरी दृष्टि उनके नेत्रों से जा मिली । उनके नेत्रों में अकस्मात् उमड़ आने वाली पता नहीं कौन सी भावना थी, जो मेरे शरीर में नख–शिख सिहरन उत्पन्न कर गयी ।

"बस, बहुत हो गया । अभी से इतनी व्यस्त मत बनो । जिन्दगी भर व्यस्त ही तो रहना है । इन क्षणों को पकड़ने की कोशिश करो । ऐसे अभिनव मधुर–मधुर पल जीवन में लौटते नहीं, समझीं । आओ, आराम करें"–कहने के साथ ही उन्होंने मेरे हाथ का झाड़न एक ओर रख, मेरी कलाई पकड़ मुझे अपने पास बैठा लिया । स्वयं बर्थ पर खिड़की से सट कर बैठते हुए मेरा सिर अपनी गोद में रख मुझे लिटा दिया । उनकी हथेलियाँ मेरे कपोलों पर स्थिर हो रहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और वे एकटक मेरी ओर देखते हुए मधुसिक्त स्वर में बोले–"तुम्हारे पास से हटने का मन नहीं कर रहा है–मैं तुम्हें कैसे और क्या सुख दूँ ? यही सोच रहा हूँ–

"अच्छा, मैं तुम्हें क्या कह कर पुकारा करूँ ? बताओ तो सही ।"

मेरी झिझक क्रमशः दूर हो चली थी ।

"जो आपका मन हो"–मैंने धीमे से कहा ।

"जो मेरा मन हो ? तुम्हें कुछ भी आपत्ति नहीं होगी ?"

"नहीं, वरन् खुशी होगी"–कहने के साथ ही मैं उठ कर बैठ गयी । अपनी ही भावतरंगों में आनन्द लेते हुए उनका ध्यान मेरे उठ जाने पर नहीं गया । उनके मुख पर मुस्कान फैल गयी–

"मैं तुम्हें "मनकी" कह कर पुकारा करूँगा"–कह कर मेरी आँखों में उन्होंने झाँका ।

चौंक कर मैं उनकी ओर देखने लगी ।

अनुराग ऐसे काव्यप्रेमी पुरुष के मुख से मैंने किसी बड़े ही मधुर और काव्यमय नाम की कल्पना की थी–पर यह क्या ?

मेरे मन में विस्मय के साथ अविश्वास भी आ मिला । पर मेरे परमप्रिय का ध्यान न मेरे विस्मय की ओर था और न अविश्वास की ओर ही । मेरी ओर देखते हुए उनके मुख से वात्सल्य–भाव छलका पड़ता था । भावों की कैसी विषमता ! कैसा विपर्यय !

मैं अचम्भे में आ गयी–

वे समझते थे ।

मैं नहीं समझती थी–

"मनकी" ! एक अबूझ पहेली ।

तीन अक्षरों के इस सम्बोधन में मेरी बुद्धि चक्कर काट रही थी ।

तभी वे कह उठे "देखो । मैं तुम्हारा हूँ । अब से केवल तुम्हारा ही होकर रह गया हूँ–मेरी "मनकी" को अपने मन की हर बात मुझसे कहनी होगी । उसके मन की गहराइयों में, मन की तली में, जो विषाद, जो दुःख जम कर हिम हो गया है, उसे मेरे प्यार की उष्णता से बहा देना होगा, अपने मन को निर्मल, और प्रसन्न कर लेना होगा । उस हिम को गला कर तज्जनित जल को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पारदर्शी बना कर उसमें रंग-बिरंगी भावनाओं को थिरकने देना होगा । अपना सारा का सारा दुःख बहा कर अपने मन को, जो अब मेरा है, हलका करना होगा, मेरी "मनकी" के मन के अन्दर ही अन्दर क्या होता रहता है ! मुझे दिखाना होगा, दिखाना ही होगा । मन की पीड़ा बटोर कर रखने की चीज नहीं उसे बहा देना ही श्रेयस्कर होता है । जो बह जाता है वह फिर लौटकर उत्पात मचाने नहीं आता, कह कर वे कुछ गम्भीर हो उठे । मैं चकित मुदित उनकी ओर देखती रही, वे मेरी ओर टकटकी लगा देखते हुए मौन हो रहे, और मैं ? स्तब्ध ! चकित !

पल, दो पल के बाद वे पुनः बोले-"तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारा कुछ भी मुझसे छिपा नहीं रहा है । मनकी ! आज अपना सारा दुःख मेरे सामने बहा डालो, तुम्हारे आँसुओं पर मैं बाँध नहीं लगाऊँगा-भले ही मैं स्वयं क्यों न रो पड़ूँ । मैं अपनी "मनकी" के मन को दुःख से, व्यथा से सर्वथा मुक्त कर देना चाहता हूँ । आज के दिन, तुम्हारे सौभाग्य के पर्व पर, मैं यही उपहार तुम से पाना चाहता हूँ, दोगी ?"

इतना सब सुन कर स्तम्भित सी मैं उन्हें देखती रही ।

मेरे अन्तस् की गहराई में प्रश्न उठा--"तो यह सब जानते हैं" ? और अचानक ही वर्षों पुराना दृढ़ बांध उनके अनुनय-पूर्ण अनुरोध के वज्र को संभाल नहीं सका-बह गया-पूरा का पूरा-कि आँधी में गंगा-यमुना की मिश्रित जल धाराओं की युगपद आकस्मिक आई बाढ़ के वेग से पूरा का पूरा बह गया-पता नहीं किस अज्ञात दिशा में जाकर अदृश्य हो गया-उनकी गोंद में मुख छिपा कर मैं फूट-फूट कर रोने लगी-रोती रही । पता नहीं कितनी देर तक ! उनके प्रेम की उष्णता से, हिम बन गई व्यथा के अश्रुप्रपात के रूप में बह जाने पर मैंने जाना कि उनकी गोद मेरे आँसुओं से भर गयी है-उनके नेत्रों से टपटप गिरते आँसू मेरे केशों को भिगो रहे हैं । मेरी व्यथा को धोकर बहा देने का अथक प्रयत्न कर रहे हैं । मैं पूर्णरूपेण चेतना में आकर आत्मलज्जा से भर उठी । मेरी अपराधिनी सी मूक निगाहें उनके मुख पर चली गई-अश्रुधौत, गुलाबी गुलाब सा सुदर्शन मुख । उस गहरे दुःख में भी उस मुख को देख कर मैं मुग्ध हो रही ।

उनके मुख पर करुण मुस्कान चमक उठी । वे उठ गए । मुझे भी हाथ पकड़ कर उठाया । अपने हाथ से मेरा मुँह धोया, पोंछा और तब अपना मुख धो-पोंछ, हँसते हुए बोले-"अब बस ! आज के बाद हमारे जीवन में अश्रुजल उत्पात नहीं उठाने पाएगा-चलो । अब हँस दो ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और मैं सच ही हँस पड़ी ।

कई वर्षों के अन्तराल के पश्चात् एक दिन मुझे पता चला था कि बड़ी बुआ जी ने किसी प्रसंग में अनुराग को मेरी करुण कथा, सुनाते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा था–"इस गुड़िया ने पाँच वर्ष की आयु में ही एक नाव–दुर्घटना में पूरा परिवार खो दिया, एक सर्वनाशी तूफान में फँसी नाव में कोई भी तो नहीं बचा । इसके माँ–बाप, भाई–बहिन, दादा–दादी सभी काल के ग्रास हो गए । उन दिनों यह गुड़िया अपनी बुआ के पास यहाँ थी । बस यही बच गई ।"

मेरी बुआ जी ने मुझे चाचा–चाची के पास नहीं भेजा, कदाचित् वे उन पर कभी विश्वास नहीं कर सकीं । हाँ, मुझे वे ननिहाल बराबर भेजती रहीं । मैं बिना किसी लिखा–पढ़ी के ही बुड़ी बुआ जी की दत्तक पुत्री बन गई– उनकी प्राणप्रिया पुत्री । किन्तु जैसे–जैसे मैं समझदार होती गई, अपनी क्षति को समझने लगी, तो बात–बात में, अतीत में घटी दुर्घटना की कल्पना मेरे मन को पीसने लगती ।

घटना का विवरण समाप्त करते हुए बड़ी बुआ जी ने अनुराग से यह भी बताया–"मेरी यह गुड़िया आँसू बहाना नहीं जानती, किन्तु इसका मन टूट कर, पिस कर, रह गया है । इसके प्रति मेरी ममता का अन्त नहीं है । यह मुझे बेहद प्यारी है । ईश्वर इसे अच्छे घर भेजे, जहाँ इसे वह सारा प्यार मिल सके जो इससे छिन गया है ।"

इतना सब जान कर, उसी दिन अनुराग ने बिना किसी को बताए अपने हृदय का अपरिमित प्यार मेरे लिए सुरक्षित कर दिया था ।

और आज ?

आज वे उसी सुरक्षित प्यार से मेरा आँचल भर रहे थे ।

उनकी नींद पता नहीं किस दिशा में उड़ गयी, वे मेरे ही पास बैठे रहे, ऊपर की बर्थ पर जाकर सोने की बात तो जैसे वे भूल ही बैठे, जो भी स्टेशन आता अनुराग डिब्बे से उतर जाते । जब ट्रेन रेंगना आरम्भ करती, दोनों हाथों में कुछ न कुछ पकड़े द्वार पर आते, सब कुछ मुझे पकड़ा कर डिब्बे के अन्दर आ जाते । उनकी प्रसन्नता उनकी मुख–मुद्रा से छलक–छलक पड़ती थी ।

संध्या होते–होते हमारा वह मधुकुंज ढेरों मैगजीनों, फलों, खिलौनों और पुस्तकों से भर उठा ।

जिस किसी भी चीज पर मेरी प्रशंसा–भरी दृष्टि उठ जाती उसे तो वे आँख–मूँद कर खरीद ही लेते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पति की यह दरियादिली बड़ी मनभावनी तो थी ही, साथ ही कल्पनातीत भी। मैं सोचती रही–"ब्याह में कितना आनन्द है !"

कितनी नादान थी मैं उस समय। क्या वह सब मुझे पत्नी होने के नाते मिल रहा था !

रात के आते-आते मैं उनसे काफी खुल गयी। मुझे कुछ विनोद की सूझी। पूछ बैठी–"आपने इतने सारे खिलौने किसलिए खरीद लिए हैं ? वहाँ छोटे बच्चे तो हैं नहीं, मेरा संकेत उनके निवास-स्थान के प्रति था।

सुनते ही अनुराग हँस पड़े, हँसते गये, हँसी कम पड़ने पर बोले–"तुम समझी नहीं ?

मेरे उत्तर की अपेक्षा किए बिना ही वे उठ गये, बड़े ट्रंक पर एक तौलिया बिछाकर उन्होंने सारे खिलौने उस पर सजा दिये।

"देखो, देखो, अब ये खिलौने कितने अच्छे लगते हैं !"

"जी, अच्छे तो बहुत लगते हैं"–खिली-खिली दृष्टि से खिलौनों की ओर देखते हुए मैंने कहा।

"मैं, ये सारे खिलौने अपनी मनकी के लिए लाया हूँ। उसे खिलौनों का बेहद शौक है। तुम्हें नहीं मालूम ?"

इस विनोदसिक्त प्रश्न से मैं चौंक गयी–"मेरे इस शौक का पता इन्हें कैसे चल गया ?"

यह मूक प्रश्न आया और तुरन्त ही उसका समाधान भी हो गया। मैं समझ गयी कि अवश्य ही बुआ जी ने ही किसी प्रसंग में मेरे इस शौक की चर्चा इनसे कर दी होगी।

अनुराग का ध्यान दूसरी दिशा में मुड़ गया था, बोले–"सच पूछो तो तुम मेरी कविता हो, कविता नाम घिसा पिटा लगता। इसीलिए मैंने तुम्हें "मनकी" नाम दिया है। तुम मेरे मन की हो। हो न ?

अब की बार मैं बोले बिना न रह सकी, धरती की ओर आँखे किए हुए ही मैंने कहा–"बड़े ऊँचे विचार हैं आपके, मेरे बारे में ! मैं आपके मन की हूँ–आपकी कविता हूँ जानकर मैंने सब कुछ पा लिया। अब मैं भी बताती हूँ कि आप मेरे लिए भगवान हैं, साथ ही मेरे काव्य भी।"

"अच्छा" ! कहने के साथ ही वे बड़ी ही मधुर उन्मुक्त हँसी हँस पड़े। मेरी दोनों हथेलियाँ अपने हाथों में ले उन्हें अपने होठों से लगाने के उपरान्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आँखों से लगा हँसी रोक कर बोले–अच्छा ! तो एक बात और सुनो–

"है काव्य से कविता अलग, क्या तुम समझती हो यही ?
कविता बनी तो काव्य में ही, धार रस की है बही ॥"

सुनकर निस्संकोच मेरे नेत्र ऊपर उठ गये । मैं अपने प्रिय की ओर देखती रह गयी–सोचती रही । "यह कैसा जगमगाता रत्न मेरे माथे पर आ सुशोभित हो गया है ! कैसा प्रकाशपुंज है इसमें ! यह कहीं स्वप्न तो नहीं ?"

पर वह स्वप्न नहीं था । प्रत्यक्ष था–सत्य था–मुझे विश्वास हो गया कि इस भौतिक जगत् में अमृत के निर्झर भी हैं । उसी दुर्लभ निर्झर की धारा मेरे तन–मन को शीतल कर रही है–अमर प्रेम के रस से सिक्त कर रही है । इसी विश्वास–जनित आनन्द में मैं डूबती गयी ।

ट्रेन आगे बढ़ती रही । समय भागता रहा । इस बीच अनुराग ने नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों का रस स्वयं लिया और आग्रहपूर्वक मुझे कराया । कितना कुछ तो हमारे साथ ही था और कितना कुछ उन्होंने डाइनिंग कार से मँगाया । इसके अतिरिक्त अनेक स्टेशनों पर उन्होंने खाद्य–सामग्री ली । परिणामस्वरूप हम दोनों ही रात का भोजन किसी प्रकार भी नहीं कर सके । रात गहरी हो आई । अनुराग ने दोनों बर्थों पर धुली चादरें बिछा दीं । बोले–"अब मैं ऊपर की बर्थ पर सो जाऊँगा–जाऊँ ?"

मैं कैसे और क्या उत्तर देती ? मुझसे कुछ भी उत्तर न पाकर वे द्विविधा में दिखे, पता नहीं क्या समझे, नीचे की बर्थ पर ही यथासम्भव कम स्थान में स्वयं लेटते हुए, मेरा हाथ पकड़ कर मुझे अपने पास ही लिटाते हुए बोले–

"आज की रात मैं तुम्हें अलग कैसे सुला सकता हूँ ? ऐसी नासमझी नहीं करूँगा ।"

मैं निर्विरोध भाव से उनके पास लेट रही । उनकी छाती में मुख छिपाए रात भर गहरी नींद सोती रही । ऐसा सुरक्षित स्थान पाकर कौन गहरी नींद नहीं सोती !

इस प्रकार यात्रा के ये इने–गिने दिन, गीतमय, संगीतमय, काव्यमय, कवितामय बीत गये, जीवन में ऐसा भी अमाप्य आनन्द होता है !

अन्ततः हम अपने गन्तव्य स्थान पर सूर्योदय बेला में पहुँच गए । एक छोटा सा पर्वतीय स्टेशन, किन्तु स्वागत ऐसा कि कुछ पूछिए मत !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ससुराल का वातावरण !

मेरे जीवन का सर्वथा नवीन अनुभव !

वधू-गृह प्रवेश के समय अनुराग, जो अब मेरे पति थे, लोक-परलोक के स्वामी थे, जिनका नाम मन ही मन जपते हुए भी अब वाणी द्वारा उच्चरित करना अशालीनता होती, दो तीन घंटे तक लगातार विभिन्न रीति-रिवाजों, रस्मों को पूर्ण करने में लगे रहे । तदुपरान्त किधर गये मुझे कुछ पता नहीं । मेरे विश्रामादि की .व्यवस्था मेरी दोनों मधुर-भाषिणी ननदों ने की । वे दोनों ही मुझे लगभग हर समय घेरे रहीं, और मेरी एकं-मात्र जिठानी, अनेक कार्यों की भीड़ में खोई रहकर भी जब-तब दो एक मिनट मेरे पास खड़ी रहकर मुझे अपने स्निग्ध सुललित वाक्यों से अभिषिक्त कर जातीं ।

इस प्रकार के पावन प्रेममय वायुमण्डल में श्वास लेते हुए मुझे प्रतीत होता जैसे कि मैं स्वर्ग के द्वार पर पहुँच गयी हूँ । मधुर अनुभूतियों के मध्य ही मुझे कभी-कभी अपने जेठ का स्वर सुनाई पड़ता-"अब बहुत हुआ अम्माँ । बिचारी पर कुछ तो रहम करो, यह हिन्दुस्तान का दक्षिणी भाग है, यहाँ घूँघट का क्या काम !"

उनकी सहानुभूति व्यर्थ जाती । मेरी ददिया सास के रहते किसमें साहस था जो मेरे मुख को घूँघट-मुक्त रखता । वे अपने कड़कते कण्ठ से कहतीं-"तुम लोगों का तो दिमाग फिर गया है, नयी दुलहिन है, घूँघट नहीं काढ़ेगी तो क्या हंड़िया ऐसा मुँह खोल कर बैठेगी ?"

ऐसे समय घूँघट मुझे बहुत प्रिय लगता । उसकी ओट में मैं मनमाने ढंग से मूक हँसी हँसती, जिस दिशा में चाहती देखती । उसी की आड़ में मेरी दृष्टि अपने प्रिय को ढूँढ़ती रहती, किन्तु एक बार भी उनकी झलक तक नहीं मिली ।

अपनी ससुराल में ही आकर मैंने जाना कि इस संसार में कितने विविध प्रकार के प्रेम-सम्बन्ध होते हैं । एक गठबन्धन ने पता नहीं कितनी रंग-बिरंगी डोरियों से मेरे मन को जोड़ दिया ।

मेरी ददिया सास के प्यार की सीमा नहीं थी । उस रात उन्होंने मुझे अपने हाथ से भोजन खिलाया और मुझे अपने साथ ही सुलाया भी । सोने से पहले उन्होंने स्वयं मेरी नजर उतारीं, बोलीं-"दुलहिन ! तू इतर-फुलेल मत लगइयो, समझी ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनकर मुझे हँसी आ गयी । घूँघट में छिपे अपने मुख को मैंने स्वीकारात्मक हिला दिया ।

और तब ?

दूसरे दिन मेरी ननदों ने विविध अलंकारों से मुझे–नख–शिख अलंकृत कर झलमलाते वस्त्रों से अरुणाम्बरा कर बरामदे में बिछे मखमली कालीन पर बैठा दिया । जीवन में प्रथम बार मैंने अपने झीने अवगुण्ठन से दक्षिणी नारियों की ऐसी भीड़ देखी । उनकी भाषा मेरे लिए अबोध्य थी, किन्तु उनकी मुद्राएँ, संकेत, भावनाएँ और स्नेह छलछलाती दृष्टि मुझसे बहुत कुछ कह गई । मेरे घूँघट को उठा, मेरा मुख देख, कौतूहल और प्रशंसा से प्रेरित हो वे मुझसे ऐसी सार्वभौम भाषा बोल जातीं कि मैं रोमांचित हो उठती ।

मूकता में कितनी मुखरता छिपी रहती है । दृष्टि में कैसी मार्मिक भेदभरी वाङ्मयता व्याप्त रहती है । मैंने उसी दिन जाना ।

कुछ ही घंटों में मेरे पास विभिन्न प्रकार के उपहारों का ढेर लग गया ।

उस रात सोने से पूर्व मेरी सास सबकी आँख बचा कर मुझे अपने कमरे में ले गयीं । चारों ओर सतर्क दृष्टि डाल, आश्वस्त होकर कि कहीं कोई भी आस–पास नहीं है, मुझे अपने पास ही पलंग पर बैठा कर मेरा घूँघट हटाते हुए बोलीं–''अब मैं तुझे अच्छी तरह देखूँ तो सही !''

उन्होंने सच ही मुझे बड़े ध्यान से देखा, मेरे माथे पर अपने ममतासिक्त ओष्ठ रखे और तब मुस्करा पड़ीं । उनके उमड़ते आनन्द से झाँकती उनकी हँसी, उनकी मुखमुद्रा को कोमलतम बना गयी–

''मेरे मन के नन्दन–वन के लिए तू तो शची है–शची । मेरे अनू को सुखी रखना, थोड़ा जिद्दी स्वभाव का है, मैं पहले से ही बताए दे रही हूँ । कोई भी परेशानी हो तो अपनी इस मां से बताना । तेरी असली मां तो मैं ही हूँ । अब यही घर तेरा घर है–असली घर । दादी की बातों का बुरा मत मानना–वे मन की बहुत अच्छी हैं, पर पुरातनपंथी हैं । आज भी वे ही तुझे लेकर सोयेंगी । कहती हैं कि फूल जैसी दुलहिन है, कहीं उलटी–सीधी बयार, अलाय–बलाय न लग जाए........ ....''

मेरी सास अपनी बातें पूरी नहीं कर पायीं–

''अरे । ओ बड़ी दुलहिन ! कहाँ गयी ?'' सुनते ही वे कमरे के बाहर निकल गयीं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे तो चली गयीं, पर उनका कुछ क्षणों का सान्निध्य ! उनका ममतामय आँचल, विवाह की सर्वोत्तम परिणति !

मेरी वह रात्रि भी दादी के वक्षःस्थल के सामीप्य में ही बीती । उसके समाप्त होते ही सौभाग्यश्री से उल्लसित उषा के कर से फूट कर फैलती सूर्य-किरणों की सुनहरी डोरियों में बँधी पक्षी-कलरव की घंटियाँ एक साथ बज उठतीं । सर्वत्र जागरण, स्फूर्ति, और उमंग व्याप्त हो गयी ।

कुछ ही देर में मुझे भनक मिली कि मेरी "मधुरजनी" का वही दिन है । जान कर एक नवीन प्रकार का कम्पन मुझे नख-शिख हिला गया । उस दिन मुझसे क्या-क्या कराया गया, घर में क्या-क्या होता रहा, मुझे कुछ भी याद नहीं ।

मेरे श्वसुर ने घर के एकदम पास ही पर्णकुटीनुमा एक छोटी सी बँगलिया ले रखी थी । उसी में उन्होंने चुपचाप नवदम्पति के निर्विघ्न विहार की व्यवस्था कराई थी । वहाँ का प्रबन्ध उन्होंने एक विशेष परिचारिका अंगम्मा को सौंप दिया था । अंगम्मा सुमुखी होने के साथ ही बड़ी विनोद-प्रिय भी थी । हास-परिहास उसमें प्रतिपल जीवन्त रहते थे ।

रात्रि का अन्धकार व्याप्त होने के पूर्व ही मेरी ननदों ने मुझे सजाने में अपनी सम्पूर्ण कला लगा दी । विभिन्न कोणों में बैठाकर, खड़ा कर उन्होंने मेरी साज-सज्जा को निरखा और परखा । उस समय उन्हें यह भी ज्ञान नहीं रहा कि मैं एक जीती-जागती लड़की हूँ-जड़ प्रतिमा नहीं-वे यह भी भूल बैठीं कि मैं सम्बन्ध में उनकी बड़ी भाभी हूँ । मुझे उनकी सरलता, व्यस्तता, तल्लीनता देखकर एक ओर तो हँसी आ रही थी और दूसरी ओर उनकी कलात्मक कुशलता को लक्ष्य कर मैं आश्चर्य में डूबी जा रही थी ।

मेरी साज-सज्जा में नीलवर्ण और स्वर्णिम वर्ण का विचित्र योग किया गया था । कभी उसमें नीलवर्ण चमकता कभी स्वर्णिम वर्ण, और कभी हरित वर्ण झलक मारने लगता । जिसने भी मुझे देखा, देखता ही रह गया । मेरी ननदों ने किसी को भी मुझे स्पर्श नहीं करने दिया । जो भी कोई मेरे घूँघट की ओर हाथ बढ़ाता तो वे हँस कर कह उठतीं-"अरे नहीं, हाथ मत लगाओ-बड़ा कोमल फूल है-मुरझा जाएगा, मुरझा"-वे स्वयं ही मेरा घूँघट खोलतीं, मुख दिखा देतीं, मेरे मस्तक पर विराजती चन्द्राकार नीलम व मोती जड़ित बेंदी आकर्षण का विशेष केन्द्र थी । घूँघट पड़ा रहने पर भी हलके नीलवर्ण के, सितारों-जड़े पारदर्शी दुपट्टे के भीतर से वह अपनी कान्ति झलकाती रहती । जिसने भी मुझे देखा उसी ने मेरी ननदों के कौशल की प्रशंसा में जमीन-आसमान एक कर दिया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रात्रि के कुछ ही गहरी होने पर मेरी दोनों ननदें मेरे कटिभाग में हाथ डालकर जब मुझे कॉटेज की ओर ले चलीं तो मैंने चलते हुए देखा कि मेरे पैरों के नीचे पड़ने वाली धरती पर सतरंगी, इन्द्रधनुषी अल्पना ने फूल ही फूल खिला दिए हैं । अपने घूँघट से मुझे उस कलाकृति का ओर-छोर नहीं दिखाई पड़ा । मैं चकित-थकित सी उन अल्पनाओं की सराहना करती, यथाशक्ति अपने पैरों को उन पर पड़ने से बचाती हुई आगे बढ़ती हुई-सोचती रही-नारी की कोमल हथेली से जुड़ी छोटी-छोटी उँगलियों में कैसी अद्वितीय कला छिपी रहती है ।

कॉटेज के द्वार पर सोलह शृंगार से सुसज्जित सुहागिन रंगम्मा, एक लघु कलश पर रखी चाँदी की तश्तरी में प्रज्ज्वलित दीपक, हल्दी, कुमकुम, अक्षत, फूल आदि लिए खड़ी थी । मुझे देखते ही उसने द्वार पर कुछ पूजा कर पुष्पपंखुड़ियाँ मुझ पर बिखेर दीं । सम्भवतः मेरी ननदों ने संकेत से उससे कुछ कहा, द्वार पर से रंगम्मा ने मुझे अन्दर कर लिया । मेरी ननदें-"भाभी ! अब कल भेंट होगी"-हर्षित स्वर में कहती वापस उस घर की ओर बढ़ गयीं, जहाँ से सुरीले कण्ठों से गाया जाने वाला-"मधुर रहे यह मधु की रजनी, अमर बने यह मंगल-रजनी, सदा हँसे यह प्रिय की सजनी ।"-गीत सुनाई पड़ रहा था ।

मुझे सहारा देते हुए रंगम्मा ने मेरे पृष्ठ भाग पर अपना हाथ रख लिया और संकेत से ही मार्ग-दर्शन करती हुई वह मुझे नव-नव कलियों से, अर्द्धविकसित पुष्पों से सज्जित, अगरबत्तियों से सुवासित, पुष्पकयान के समान ऐसे कक्ष में ले गयी जिसकी नींव ही मानो मधु-सिंचित थी और जिसमें "सहस्रधारा" के समान प्रतिनिमिष जल के स्थान पर मधुर-रस की वर्षा हो रही थी ।

उस अदृश्य वर्षा में भीगते हुए मैंने देखा कि मेरे काव्य-पुरुष विहँसती मुद्रा में, मूर्तिमान शृंगार के रूप में, उस मधुसागर की ओर आ रहे हैं, जो क्षीरसागर से स्पर्द्धा करता था-उस क्षीर-सागर से जिसमें भगवान् विष्णु शेष-शय्या पर शयन करते और भगवती लक्ष्मी उनका पायपलोटन करती रहती हैं ।

रंगम्मा ने उन्हें आते देख, मुझे पलँग पर बैठा दिया और स्वयं बाहर निकल गयी । और तब !

एक सुखद, मादक नीड़ । उस नीड़ में केवल हम दो । सिहरन उत्पन्न करने वाली साज-सज्जा, और बाहर प्रकृति का शृंगारमय चतुर्दिक्-व्यापी अपार वैभव ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने मूर्तिमान सर्वस्व को शय्या के पास देख मैं उठी, उनके चरणों की ओर झुकी ही थी कि उन्होंने मुझे अपने हृदय से लगा लिया ।

तब ?

ऐसा मधुर भव्य, दिव्य, अकल्पित सुख, उमड़ता हर्षोन्माद, भावावेश में छन्द की भुजाओं में आकर समा गया–

कुछ देर अब मुझसे सुनो, जो गीत का भी गीत है ।
दम्पति–युगल के प्रणय का, पावन समन्वित रूप है ॥

श्रृंगार रस का भेद यह, दाम्पत्य सुख का चित्र है ।
वात्सल्य रस का जन्मदाता, जो पुनीत–पुनीत है ॥

रात्रि थी, नवरात्रं थी, श्रृंगार का ही राज्य था ।
सौभाग्य का मेरे तभी, कुछ मधुरतर संलाप था ॥

"आज मधुरजनी हमारी, प्राण दो मिल एक हों ।
ग्रन्थिबन्धन से बँधे, दो हृदय मिल कर एक हों ॥"

कहते हुए मेरे प्रणय का, लाल मुख तब हो गया ।
छाए नए कुछ भाव फिर, उस भार से सिर झुक गया ॥

संकेत प्रिय का समझ कर, उत्साह मानों सो गया ।
स्तब्ध सी मैं रह गई, कहना कठिन कुछ हो गया ॥

मेरे हृदय की रागिनी ! मेरी सखी, और स्वामिनी ।
ऐसा कहो, ऐसा कहो, यह रात हो मधु की सनी ॥

सुनकर विनय सी प्राण की, काँपा हृदय कुछ हो गया ।
अस्तित्व ही जैसे हमारा, था अचानक खो गया ॥

देखा नहीं, समझा नहीं, प्रिय बोलते ही तो रहे ।
नव कल्पना में बह गए, कुछ और से वे हो रहे ॥
"प्रतिमा सजी श्रृंगार की, औ हम पुजारी हो गये ।
पूजा करूँ मन में बिठाऊँ," क्या नहीं वे कह गये ॥

वे उठ गये, मुझको उठाया, और समझा भी तभी ।
कुछ सत्र से वे हो रहे, जाना हमारा भय जभी ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"चुप रह गयी कैसे अचानक ? सो गये क्या गीत हैं ?
प्राण मेरे आज मुझसे, क्या स्वयं भयभीत हैं ?

भय की नहीं कुछ बात है, तुम स्वस्थ हो जाओ प्रिया ।
अंग तेरे हिम बने हैं, काँपता सा है हिया ॥"

कहते हुए वे ले गये उस, पुष्पशय्या पर मुझे ।
जो कल्पना में उदय हो, भय से कँपाती थी मुझे ॥

कुछ देर सुन्दर सी कहानी, सरस सी कहते रहे ।
औ भय हमारा देर तक, वे इस तरह हरते रहे ॥

मैं सहज हो आई जभी, और मुक्त भय से हो गयी ।
जागी तभी अनुभूतियाँ, कैसी विचित्र नई नई !!

जाना नहीं तब किस तरह, मैं नींद में थी खो गयी ।
जो कुछ नहीं था पास मेरे, सब अचानक पा गयी ॥

* * *

रात बीती है सभी, तब यह पता मुझको चला ।
अपनी कला को साथ लेकर, चन्द्रमा जब घर चला ॥

प्रिय ने जगाया प्रेम से, फिर, और मुझसे यह कहा ।
दृष्टि से कोमल नई सी, प्यार की धारा बहा ॥

"लो उठो, मम सहचरी ! प्राणाधिके ! प्राण-प्रिया !
अब आ रही है गगन में, मंगलमयी सूर्य-प्रिया ॥

जिस अंक में तुम हो प्रिये ! वह हो गया अब धन्य है ।
मुझ सरीखा भाग्यशाली, व्यक्ति क्या अब अन्य है ?"
कहते हुए उल्लास से, मुख नेत्र पर ही रख दिया ।
सौभाग्य के नव-पुष्प से, मस्तक हमारा भर दिया ॥

भाव मुझ पर छा गये, औ भक्ति ने तब यह किया ।
उस अंक में ढूँढ़े चरण, मस्तक उन्हीं पर रख दिया ॥

वे चौंकते-से कह उठे, "यह क्या प्रिया ? यह क्या प्रिया ?
आज तो मैं था पुजारी, क्या किया ? यह क्या किया ?"

* * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इक द्वार से ही झाँकते, कुछ वृक्ष थे सिंगार के ।
वे देखने वैभव लगे, फूलों भरे नव भार के ॥

भूल मुझको पास अपने, भाव में खोने लगे ।
देखते ही देखते, वे मग्न हो कहने लगे– ॥

"कैसी अनोखी रात थी ! कैसी अनोखी थी प्रिया !
कैसा अनोखा राग था, कैसी अनोखी प्रतिक्रिया !!

कैसे विचित्र रहस्य थे, कैसे प्रकट वे हो गये ?
रातें सुनहरी हो गयीं, औ दिन रुपहले हो गये ॥"

ओर मेरी देखकर, संकोच से वे भर गये ।
मधुरात की उस याद से, बस दो हृदय शरमा गये ॥

* * *

"मम प्राण ! हम तुम एक हैं, अनुभूति यह कैसी नयी ?
इक प्यार ही की बात थी, क्या बात थी ! क्या हो गयी ??"

कह कर हुए गम्भीर वे, कुछ सोचते ही रह गये ।
फिर भव्य सी इस सृष्टि की, गोपन-कथा वे कह गये ॥

* * *

शृंगार ही रस-राज हैं, इस पर कहाँ विश्वास था !
चित् ब्रह्म की उनकी प्रिया का, प्रकृति का वह श्वास था ॥

इस सत्य का आलोक देखा, जब महामुनिराज ने ।
मैं ब्रह्म का आनन्द हूँ, हँस कर कहा रसराज ने ॥

प्रिय नें बता दी थी मुझे, अनुभूति जो उनको हुई ।
मेरी रही तब बिनकही, लज्जा महाबाधक हुई ॥

मधुरात के पश्चात् जब, मुझको मिला एकान्त था ।
मन ने कहा-आश्चर्य है, अनुभूति का क्या अन्त था !!

जो थे हिमालय वे स्वयं ही, उस समय थे हिल गये ।
अपने परमप्रिय प्राण से, क्या प्राण मेरे मिल गये !!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन तो मनुज का कोष है, अनुभूति उसकी सम्पदा ।
पर तन न हो तो क्या कभी, वह भोग सकता सम्पदा !!

यह सोचती ही मैं रही, अनुभूति ब्रह्मानन्द है ।
सच ही कहा यह ब्रह्म तो, चित् सत्य औ आनन्द है ॥

* * *

बीते दिवस कुछ इस तरह, मैं थी प्रगल्भा हो गयी ।
'क्यों पत्र लिखते थे नहीं ?' मैं पूछने उनसे लगी ॥

'बात मैं सच्ची बता दूँ, आज मैं तुमको प्रिये !
अपनी निगाहों में स्वयं ही, उच्च उठने के लिए ॥

उस समय की निज दशा, तुमको बताता क्या भला !
गीत हूँ तुमको सुनाता, समझ लो--हँस कर कहा- ॥

कैसा था सम्मोहन तेरा, कैसी मेरी चाह थी ।
विकल बनाती प्रतिपल मुझको, ऐसी तेरी चाह थी ॥

कहाँ हिमालय झुकता तेरा, ऐसी छोटी बातों से ।
दुनिया में यदि उच्च रहूँ तो, भूलूँ ऐसी बातों को ॥

सुनकर मैं तो भूल गयी तब, अपनी सारी बातों को ।
उनकी बातें पूछा करती, सारी-सारी रातों को ॥

* * *

एक दिन हँस कर पूछा मैंने, बदले क्यों हिम-आलय में ।
बोले--यह तो एक कहानी, फैल रही हर आलय में ॥

* * *

नव किशलयों से युक्त तुमने, क्या नहीं देखी कली ?
वह बन्द है सब ओर से, मधु को लिए कितनी भली ॥

मधु को बहाती वह तभी, परिपक्व जब वह हो चला ।
चंचल हुए आते पवन को, कब दिखाती मधु भला ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चंचल पवन रुकता नहीं, औ भागता परिमल लिए ।
वैभव छिपाती, मधु बचाती, वह कली प्रिय के लिए ॥

पँखुरी की साज–सज्जा, से सजा कर हृदय तब ।
खोल देती कोष अपना, प्रीति का संचार जब ॥

रसिक प्रिय चंचल हृदय है, जानती कब वह कली ।
वह अकिंचन टूट जाती, लूट लेता मधु अली ॥

यह दृश्य देखा प्रकृति में, मन और–सा कुछ हो गया ।
अपनी प्रिया की कल्पना कर, मैं हिमालय हो गया ॥

उच्चता के गीत ऐसे, नित्य प्रिय गाते रहे ।
आश्चर्य है इतनी कथायें, वे कहाँ पाते रहे !!

* * *

वह गीत ही फिर मूर्त हो, आत्मज हमारा हो गया ।
वह नीड़ ही प्रिय प्रेम का, उपवन हमारा हो गया ॥

शृंगार के आशीष से ही, फूल शाश्वत खिल गया ।
औ पुत्र के ही रूप में, जैसे उमासुत मिल गया ॥

ले अंक में उस फूल को, ऊँचा हिमालय हँस दिया ।
वात्सल्य की जो बाढ़ आई, प्यार उसने कर लिया ॥

"शत वर्ष का हो पुत्र अपना"–दे दिया आशीष तब ।
पूर्ण अब हम हो गये, इससे अधिक आनन्द कब ?

यह दीप मेरे वंश का, औ ज्योति अपने प्रेम की ।
ध्यान रखना है हमें, इसके कुशल औ क्षेम की ॥

मुग्ध हो शिशु देखते, आह्लाद से वे भर गये ।
"अब नीड़ पूरा हो गया", कह मग्न रस में ह्वे रहे ॥

मैंने सुनाई आज है, शृंगार रस की इक कथा ।
जो इस चराचर सृष्टि में, लगती मधुर, सुन्दर कथा ॥

यदि सच कहूँ तो यह रही, प्रिय–प्रेम की मेरी कथा ।
मत सोचना, यह तो बनी है, कल्पना से मृदु कथा ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रेम की अब कुछ कथा ही, रह गई जो शेष है ।
औ दिव्य सी पिछली कथा का, रह गया उन्मेष है ॥

उत्तरांश

जीवन हमारा सच कहो, तो दूसरा आकाश है ।
गिनती नहीं होती कभी, कितने जनों का साथ है ॥

सूर्य–चन्द्र समान ही, दम्पति दमकते हैं यहाँ ।
लोक के ही रूप में, तारे चमकते हैं यहाँ ॥

ऋतु एक सी, रंग एक सा, रहता नहीं आकाश का ।
रंग बदलता है अचानक, इस महा आकाश का ॥

शीतल पवन चलता कभी, आँधी कभी आती यहाँ ।
इन्द्र–धनुषी रंग काला, हो बदल जाता यहाँ ॥

कैसे अचानक इन्द्र–धनुषी, रंग काला हो गया ।
चन्द्र को कैसे अचानक, चिर–ग्रहण था लग गया ॥

इसकी कथा कैसे बताऊँ ? शक्ति मुझमें है नहीं ।
सुनकर कहानी दुःखमय, विचलित न हो जाओ कहीं ॥

क्या सुन सकोगे करुण–रस–मय, प्रेम की बाकी कथा ?
किस शक्ति से मैं कह सकूँगी, दग्ध उर की वह व्यथा !!

आया विकट काला बवंडर, सब दिशायें अन्ध थीं ।
ले गया मेरा हिमालय, राह मेरी बन्द थीं ॥

आँसुओं की बाढ़ में, मेरा हृदय ही बह गया ।
मैं क्या करूँ ? कैसे रहूँ ? यह चेतना से कह गया ॥

तब चेतना चीत्कार कर, रोती हुई ही सो गयी ।
पत्थर बनी सी शून्य में, तब चूर थी मैं हो गयी ॥

आन्तरिक जो वेदना, प्रतिपल रुलाती थी मुझे ।
जीवन कहो कैसे बचे ? नित ही सुनाती थी मुझे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हूक जो मन पीसती, रह मूक मेरा प्रति घड़ी ।
मेरी विकलता सह न पाती, वह स्वयं रोती खड़ी ॥

व्यथित मन की वेदना, सच व्यक्त हो सम्भव नहीं ।
जो तोड़ते मन की दिवारें, सह सकूँ सम्भव नहीं ॥

पीड़ित, व्यथित, अन्तरव्यथित, जब रात रोती है कभी ।
अपनी व्यथा को व्यक्त करने, शब्द क्या करती कभी ??

पर वेदना तो व्यक्त होती, ओस-कण के रूप में ।
मानव-व्यथा भी व्यक्त होती, आँसुओं के रूप में ॥

धारा प्रबल बहती चली, औ अश्रु-वर्षा हो रही ।
बाँध तो बँधता नहीं, मैंचेतना ही खो रही ॥

मैं आ पड़ी हूँ भूमि पर, मेरा हिमालय तो गया ।
कविता लिखूँ ! कैसे लिखूँ ? जब काव्य मेरा सो गया ॥

शृंगार तो रस-राज है, पर वे स्वयं रोने लगे ।
''अवसान मेरा 'करुण' में, यह सत्य'' वे कहने लगे ॥

''शृंगार का अवसान कब ?'' रस ने कहा सारल्य में ।
शृंगार का ही मूल तो, विकसित हुआ वात्सल्य में ॥''

असमर्थ हूँ, रोता हृदय, मैं छोड़ती कविता-कथा ।
आ गयी हूँ भूमि पर, बतला रही सीधी कथा ॥

* * *

जो हाहाकार मेरे अन्तस् की दीवारों पर सिर पटक रहा था, उसे मैं सह नहीं पा रही थी । फिर भी सह रही थी । कैसे सह रही थी ? मैं स्वयं नहीं जानती । अवश्य कोई दैवी अदृश्य कवच रहा होगा जिसने रक्षा की । मुझे लगता था कि मैं चारों ओर से दुर्लंध्य, काली, भयावह चट्टानों से घिर गयी हूँ-किसी भी दिशा में मेरी गति नहीं । कोई भी तो रास्ता दिखाई नहीं पड़ता था, सब ओर, घुटन, घुटन, बस घुटन !

पर इस प्रकार जीते जी ही मर जाने से कैसे काम चलता ।

मेरे प्रियजनों की मेरे प्रति करुणा, स्नेह और सहानुभूति का अन्त नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था । इस अनुकूलता में प्रतिकूलता आ मिली और प्रियजनों की करुणा और सहानुभूति मेरी पीड़ा में भीषण तूफान उठाने लगी । "प्रियजनों की दृष्टि में मैं दयनीय हो गयी हूँ"–यही विचार मुझे आत्महीनता की शिला के नीचे दबाने लगा । "मेरा प्रारब्ध ही उनकी उस अमूल्य सम्पत्ति को नष्ट कर गया है"–यही अपराध–भावना मुझे उनसे दूर ले जाने लगी ।

तभी मेरे कर्तव्य ने मुझे झकझोर कर रख दिया, बोला–"क्या तुम्हीं पर ऐसी विपत्ति पड़ी है ? हिमालय के वंश के दीपक की, हिमालय और तुम्हारे प्रेम की ज्योति की रक्षा, आज प्रिय–जनों के आँचल कर रहे हैं । तुम्हारी सन्तान ! तुम्हारा आत्मज, तुम उसी को भूल बैठीं ! हिमालय का उसके प्रति प्रेम ! वह भी भूल गया तुम्हें ?"

कर्तव्य की इस भर्त्सना ने मुझे होश में ला दिया । मैं जैसे एक भयंकर स्वप्न से जाग गयी । मेरी मनोदशा किसी उन्मादिनी से कम न थी । मेरे मनोभावों को, विशेष कर मेरी आत्महीनता की निरन्तर बढ़ती हुई अनुभूति, और अपराध भावना की कचोटन को मेरी परमप्रिया बड़ी बुआ जी और सास–ससुर भली भाँति समझते थे । मेरे चित्त की शान्ति के लिए वे सब कुछ करने को तत्पर थे, अत: जब उन्होंने मेरी लगन स्वावलम्बिनी बनने की ओर देखी तो उन्होंने बाधा नहीं दी ।

स्वावलम्बिनी बन जाने पर मुझे नई आत्मशक्ति मिली–आत्महीनता, पराश्रितजनित आत्मग्लानि से मैंने मुक्ति पाई, और तब–

बीहड़, तपती हुई मरुभूमि में, प्रेम–जल से आकण्ठ परिपूरित, लघु जलाशय में एक कमल, ऐसा कमल जिसकी पँखुड़ियों ने अभी बाह्य जगत् की बयार का अनुभव नहीं किया था, पर ध्यान जाते ही जीवित रहने का संकल्प मेरे मन में जागा–"वस्तुत: यह महाप्रभु की अनमोल देन है"–हृदय ने कहा । आशा ने कहा कि ध्यान से देखो–"यह मरुभूमि नहीं–यह तो ग्रीष्मऋतु में तपन से सूख गयी जलधारा का प्रदेश है, अनुकूल ऋतु के आते ही, यहीं, बहता हुआ निर्मल जल और हरियाली से प्रसन्न, प्रेम के पवन से झूमते, हरे–भरे खेत दिखाई पड़ेंगे । उसी हरे–भरे प्रदेश के मध्य से तुम्हें रास्ता मिलेगा, तुम आगे बढ़ सकोगी ।"

और सच ही मुझे रास्ता मिल गया, राजपथ के रूप में न सही, पगडंडी के रूप में ही सही ।

स्वावलम्बिनी बन जाने पर कुछ समझ सकने, सोच सकने की शक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझ में आ गयी । अपने आत्मज को, नन्हें से प्राण को, छाती से चिपकाए मैं उस पगडंडी पर आगे बढ़ने लगी ।

हिमालय चला गया था, अज्ञात में था, किन्तु जिस दीपक को वह मेरे हाथ में पकड़ा गया था, नीड़ को प्रकाशित रखने का जो उत्तरदायित्व मुझे सौंप गया था, क्या अब भी मैं उससे विरत हो सकती थी !

नहीं न ।

उस दीपक को अपने आँचल से ढँके–उसकी रक्षा का जी–जान से प्रयत्न करती, सब कुछ अपने ही ऊपर झेल ले जाने का प्रयत्न करती–प्रति पल अपने महाप्रभु पर अटूट विश्वास रखती हुई, मैं उस पगडंडी पर आगे बढ़ती गयी, बढ़ती ही गयी, और एक दिन पहुँच गयी उस स्थल पर, जहाँ वह पगडंडी एक प्रशस्त मार्ग में जाकर मिल गयी थी, और जहाँ हमारा दीपक स्वावलम्बी हो, मुझे प्रकाश दिखाने में, अपने चतुर्दिक् प्रकाश फैला कर जीवन के कर्तव्य का पालन करने में समर्थ हो गया ।

मैं सन्तोष पा गयी, पुलकित, हर्षित हो उठी । मूक रह कर मेरे हिमालय जो कार्य मुझे सौंप गये थे, उसकी पूर्ति कर पाने से मुझे नया आत्मसन्तोष मिला । आत्म–सम्मान और आत्मगौरव ने मेरा मस्तक ऊँचा उठाया । मुझे आकाश दिखने लगा और मेरी दृष्टि संसार की दृष्टि से मिलने लगी ।

एक बार पुनः अपने प्रियजनों का स्वागत, अभिनन्दन मैं हँस कर करने लगी ।

अब तक मैंने कभी भी श्वसुरपक्ष के मान–सम्मान में कोई त्रुटि नहीं आने दी थी । इस समय भी मैंने उसकी रक्षा की और उनकी इच्छानुसार आत्मज का विवाह उनकी मनोनीत कन्या से कर देने में तनिक सी भी हिचकिचाहट नहीं की ।

पुत्रवधू को देख कर मैंने पुत्र के और साथ ही अपने भाग्य सराहे । मेरे प्रियजनों के आनन्द का ओर–छोर न रहा ।

और तब ?

एक दिन मैं आश्चर्य मैं डूब गयी, मेरी समधिन मुझसे मिलने आई थीं । मेरे पैरों पर सिर नवाने के पश्चात् मुझे उपहार देते हुए उन्होंने जो कुछ बताया उसे जान कर तो मैं आनन्दमिश्रित आश्चर्य से स्तम्भित हो रहीं ।

मेरी पुत्रवधू ! हिमालय के अभिन्न मित्र कलरव की पुत्री ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक अविश्वसनीय सत्य !

पर सत्य तो था ही ।

विश्वास करना ही पड़ा–

इस जगत् में कितने ही सत्य हमें अचम्भे में डुबा देते हैं । यह सत्य भी ऐसा ही था ।

विवाह के बाद से मैं कलरव के बारे में कुछ भी नहीं जानती थी, एक बार अनुराग ने मुझे इतना अवश्य बताया था कि कलरव लन्दन–वासी हो गये हैं और वहीं उन्होंने एक भारतीय कन्या से विवाह भी कर लिया हैं ।

समधिन ने बताया कि हिमालय के न रहने पर कलरव मेरा सामना करने का साहस नहीं जुटा पाए, किन्तु मित्र–विछोह की दारुण वेदना के क्षणों में ही उन्होंने निश्चय किया था कि वे अपनी पुत्री का विवाह उपयुक्त समय आने पर हिमालय के पुत्र से कर देने का पूरा प्रयत्न करेंगे ।

यह रहस्य मेरे श्वसुर को छोड़कर अन्य किसी को भी नहीं पता था ।

मेरी समधिन ने और भी ढेरों बातें बतायीं और उसी के साथ यह भी बताया कि मेरी पुत्र–वधू को कलरव ने सगाई के पूर्व अपनी योजना बताते हुए उसकी भी सहमति ले ली थी ।

सब कुछ जानकर मैं मन ही मन कह उठी––"इस संसार में कलरव जैसे उदारचेता व्यक्ति कितने हैं !"

पुत्र के गृहस्थ बन जाने पर मेरे स्वयं के जीवन में भी बड़ी जीवन्तता आ गयी ।

पुत्रवधू ने कलरव जैसी ही जिन्दादिली पाई थी । वह हर घड़ी मुझे हँसाने के प्रयत्न में रहती । प्रिय के साथ विहार करती आनन्दमग्ना, फुदकती, थिरकती, चहकती गौरय्या जिस प्रकार घर–आँगन को जीवन्त करती हुई उसे अपने सहज–संगीत से भरती रहती है उसी प्रकार मेरी पुत्रवधू हमारे घर–आँगन को प्रतिक्षण अपने प्रेम संगीत से भरने लगी ।

मेरा अपूर्ण जीवन एक बार पुनः पूर्ण हो उठा, और तभी मेरे आत्मज को तीन साल के लिए विदेश जाना पड़ा ।

इस दिशा में मैंने उसे प्रोत्साहन तो दिया, किन्तु उसके साथ जाने की हामी नहीं भरी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे निरन्तर आग्रह और समझाने पर मेरे पुत्र व पुत्रवधू अपने मन में मेरी चिन्ता और नेत्रों में आँसू भरे हुए, विदेश चले गये ।

इस समय मुझमें साहस की कमी नहीं आई ।

नित्य की भाँति अपना समय व्यतीत करती हुई मैं, अपने दिवंगत–प्रिय की रागमयी भक्ति की कालिन्दी के माधुर्य में खोई, उसी के किनारे–किनारे आगे बढ़ने लगी, आगे बढ़ते हुए एक दिन मुझे ठिठक जाना पड़ा ।

मेरी कालिन्दी गंगा में जाकर मिल गयी थी । संगम ! पवित्र धाराओं का पावन संगम !

संगम हो जाने पर भी अपनी रागमयी श्यामता और सात्विक धवलता के कारण दोनों धारायें भली प्रकार पहचान में आ रही थीं । मैंने सोचा–"आज तक अपनी कालिन्दी में ही अवगाहन करती आई हूँ, क्या संगम में भी डुबकी लगाऊँ ?"

मैं संगम को देखती रही, निरखती रही, बड़ी देर तक खड़ी रही, कुछ काल तक उसकी पवित्रता का ध्यान करती हुई उसमें खो सी रही, किन्तु डुबकी नहीं लगा सकी । मन और बुद्धि दोनों ही ने अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी ।

घटना इस प्रकार घटित हुई–

मेरे मौसा जी लखनऊ में ही रहते थे । अरूप का घर उनके घर के पास ही था । किन्तु दोनों परिवारों में न तो घनिष्ठता थी, और न आना–जाना ही । अरूप के घरवालों को इतना अवश्य पता था कि वे मेरे सगे मौसा हैं, और उनके यहाँ मेरा अत्यधिक लाड़–प्यार होता है । मौसी के दिवंगता हो जाने पर भी मेरे प्रति मौसा जी के प्यार में लेशमात्र भी कमी नहीं आने पाई थी ।

पुत्र और पुत्र–वधू के विदेश–गमन के कुछ समय बाद ही मैं मौसा जी को देखने लखनऊ पहुँच गयी । मेरी मौसेरी बहिन भी उन दिनों अपनी ससुराल से पितृगृह आई हुई थी । मौसा जी और बहिन के स्नेहाग्रह से मुझे कुछ दिनों वहीं रह जाना पड़ा ।

हास–परिहास में अत्यन्त पटु, चुलबुली बहिन के साथ मेरा समय अधिकतर हँसते हुए ही व्यतीत हो रहा था कि तभी एक दिन सबेरे ही सबेरे एक आठ या दस वर्ष का लड़का आँगन में आकर, बर्तन साफ करती हुई महरी से मेरे सम्बन्ध में पूछने लगा कि क्या मैं आजकल यहाँ आई हुई हूँ ? और क्या मैं दोपहर में घर पर ही रहूँगी ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महरियों को इतना कुछ बताने का समय ही कब रहता है ! महरी ने सीधे-सीधे मुझे बुला दिया । मुझे देखते ही लड़का कहने लगा-"मेरी बहूजी आपसे मिलना चाहती हैं । क्या आप आज दोपहर को घर पर मिलेंगी ?"

सुनकर मैं विस्मय में पड़ गयी । उस लड़के से मैंने उसकी बहूजी का नाम पूछा-उसने कुछ भी नहीं बताया-बस इतना जानकर कि मैं दोपहर को घर पर ही रहूँगी, वह उलटे पैरों लौट गया । मैं और मेरी बहिन अटकलें लगाती रहीं, किन्तु कुछ भी समझ में नहीं आया । हार कर हम लोग दोपहर की प्रतीक्षा करने लगीं ।

दोपहर का भोजन समाप्त होने पर मेरी बहिन तो कुछ काम से पड़ोस में चली गयी और मैं मौसा जी के पास बैठ इधर-उधर की बातें करने लगी, तभी वही लड़का पुनः आंगन में खड़े होकर कहने लगा-"हमारी बहू जी बाहर मोटर में बैठी हैं-उन्हें ले आऊँ ?"

"जरूर ले आओ"-कहने के साथ ही मैं भी उस लड़के के पीछे चलती हुई प्रवेश-द्वार पर पहुँच कर खड़ी हो गयी ।

सड़क के उस पार खड़ी कार से उतरती बहू जी के पृष्ठ भाग की झलक मुझे मिली । सड़क पार कर, मेरे पास पहुँचते ही बहूजी ने अपने दोनों हाथ जोड़े और बिना विराम दिए निःशब्द मेरे साथ आँगन में चली आयीं ।

आश्चर्य में डूबते-उतराते हुए, मैंने उन्हें नमस्कार तो कर लिया, किन्तु बोल कुछ भी नहीं पाई, तभी उन्होंने अपने मुख पर घूँघट डाल कर बैठक में जा मौसा जी के पैर छुए ।

मौसा जी को कभी कोई आग्रह नहीं रहता था कि कौन बहू आई और किसने उनके पैर छुए, पैर छूने वाली बहुओं की संख्या इतनी अधिक थी कि उन्हें जानने का आग्रह न होना ही अधिक स्वाभाविक था ।

मौसा जी से आशीर्वाद पा बहू जी मेरे पास आकर बोलीं-"अब चलो, बताओ कहाँ बैठूँ ?"

मैं भ्रमित सी उन्हें देखे जा रही थी । किसी प्रकार नहीं समझ पा रही थी कि यह बहूजी कौन हैं ? कहाँ से आई हैं ?

उनके प्रश्न से मैं चौंक उठी-"चलिए, चलिए, ऊपर चलिए, चल कर मेरे कमरे में बैठिए"-कहते हुए उनका मार्ग-दर्शन करती हुई मैं ऊपर की मंजिल में अपने कमरे में पहुँच गयी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कमरे में पहुँचते ही बिना किसी औपचारिकता के बहू जी निस्संकोच मेरे पलँग पर बैठ, हँसी-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई कहने लगीं-

"तुमने मुझे पहचाना नहीं ? सच नहीं पहचाना ?"

उनका स्वर मुझे कुछ पहचाना सा लगा-फिर भी मैं पहचान नहीं सकी ।

"माफ करिए, नहीं पहचाना"-मैंने लज्जित हो कहा ।

"पर मैं तो तुम्हें देखते ही पहचान गयी । मुझे अपने को बहुत रोकना पड़ा, ताज्जुब है रोक ले गई ।" कहकर उन्होंने मेरा हाथ पकड़ मुझे अपने पास ही बैठा लिया और अपनी हँसती आंखों को मेरे मुख पर स्थिर कर, मेरी दाहिनी हथेली को अपनी हथेलियों के मध्य लेती हुई पुनः कह उठीं-"अरे ! मैं हूँ तुम्हारी सखी, जो अपनी जीवन-व्यापिनी सखी से केवल दो बार भेंट कर पाई थी, वह भी थोड़े-थोड़े समय के लिए । अब आज सब दिन की कसर निकाल लूँगी । और पहचान बताऊँ ? मैं ? मैं हूँ तुम्हारा ही नाम धारण करने वाली, तुम्हारे ही रूप की कल्पना अपने रूप में करने वाली ।"

सुनते ही मेरे स्मृति-पट पर बिजली सी कौंध गयी, मैं कुछ भी नहीं बोल पाई थी कि उसने पुनः पूछा-"अब पहचाना या नहीं ?" और मुझे अपने आलिंगन में भर लिया ।

इस अकल्पित भेंट, और आकस्मिक आलिंगन से मैं कुछ गड़बड़ा गयी । बड़ी ही सतर्कता से, उसके बाहुपाश से अपने को मुक्त करते हुए मैंने कहा- "मैंने पहचानने में देर की । कभी सोचा भी न था कि तुमसे यों यहाँ भेंट हो जायेगी । कितने-कितने साल तो बीत गए ! अच्छा, अब आराम से बैठो ।"

मैं पलंग पर थोड़े से स्थान में बैठ गयी । उसके लिए अधिक स्थान कर दिया । इतने वर्षों की ऋतुयें उसके स्वभाव में तनिक भी परिवर्तन नहीं ला पाई थीं । चिरपरिचित, अत्यन्त प्रिय, परम आत्मीया सखी के समान ही वह पुनः बोल उठी-

"सखी ! ऐसे काम नहीं चलने का, मैं अपने बीते हुए, उन्हीं मीठे-मीठे स्वप्निल दिनों को एक बार फिर लौटा लाना चाहती हूँ जिनकी मिठास को मैं कभी नहीं भूल पाई, भूल पाती भी कैसे ? क्या कोई भी दिन जीवन में ऐसा बीता, जब मेरे स्वामी ने तुम्हारी चर्चा न की हो ।"

बहू की भावविह्वल दृष्टि मेरे मुख पर टिक गई । उसकी वाणी पल मात्र के लिए अवरुद्ध हुई, एक निःश्वास से ही कदाचित् वह अवरोध दूर हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"एक अमूल्य मणि, मेरी दृष्टि में जिसका जोड़ इस जगत् में नहीं, तुम्हारे पैरों पर आ गिरी थी, तुम उसकी ओर ध्यान नहीं दे पायीं–शायद तुमने उसे काँच का एक टुकड़ा मात्र समझा, एक ठोकर से उसे दूर हटा कर आगे बढ़ गयीं, तुमने क्या ठुकराया था, कभी नहीं समझ सकोगी, कभी नहीं ।"

"स्पष्टवादिता ऐसी भी होती है"–विस्मित प्रश्न मेरे मन में झंकृत हुआ ।

बहू मौन हो रही । कुछ विचित्र सी गहरी वेदना उसके नेत्रों में उतर आई, और क्रमश: उसके स्थान पर एक अनुरागमयी, प्रेममयी कोमलता ने आकर उस वेदना को ढक लिया । उस कोमलता से ही दीप्तिमती हलकी सी हँसी उसके मुख पर झाँकने लगी । सहसा वह जैसे आकाश से पृथ्वी पर उतर आई ।

"आओ, अब हम तुम आराम से लेट कर अपनी–अपनी बातें बताएँ । ऐसे बैठी कब तक रहेंगी इसके अलावा प्रेम की मधुर–चर्चा, इतने दिनों के विछोह की कहानी भी कहीं बैठ कर सुनना–सुनाना अच्छा लगता है ? अरे ! जब मन मिलता है, शरीर स्वत: ही पास आने के लिए ललकते हैं । मन का मिलन, शरीर का मिलन, जब साथ–साथ हो, तभी प्रेम सन्तुष्ट होता है । मानव–मन तृप्त होता है । देखो, किसी भी अबोध शिशु के प्रेम का अनोखा केन्द्र होती है उसकी माँ । पालने में लेटे भोले–भाले शिशु के नेत्र, गृह–कार्य में व्यस्त, इधर उधर जाती–आती माता के आगे–पीछे डोलते रहते हैं, और जब माँ उसे अपनी गोद में ले, उसका मुख अपने आँचल में कर लेती है, या मात्र गोद में ले प्यार कर लेती है तो वह माँ से चिपक जाता है, उसका मुख आनन्द से खिल उठता है ।"

"ये सब क्या है ?"

इतना कह कर बहू एकदम पलँग से उठ कर खड़ी हो गयी । बोली, लाओ, अपनी घर की धुली कोई सूती धोती दो । इस साड़ी में तो लेटने में असुविधा होगी ।" कितना अपनत्व था उसकी इस माँग में !

मैं उठ गयी–

"अविलम्ब उसके हाथ में धोती पकड़ाते हुए मैंने हँस कर कहा–"सखी तुम्हारी दार्शनिकता बड़ी सरस है ।"

उसके मुख पर आन्तरिक हर्ष की लहर आ गयी ।

"उससे भी कहीं अधिक सरस है तुम्हारा यह अनमोल, दुर्लभ सम्बोधन । वाणी द्वारा मन का बहुत कुछ बाहर आ जाता है । इस सम्बोधन से तुम्हारे मन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का जो कुछ बाहर आ गया उसे जान कर मैं परम धन्य हुई । अभी तक तुम्हारी वाणी औपचारिकता से ढकी थी । है न ?''

बहू का मुस्कराता मुख मेरे सामने था, उसे देख कर कल्पना में एक बार पुनः मुझे वह अतीत का कमल सा विहँसता मनोरम मुख स्मरण हो आया ।

''अभी आई''–कह कर मैं इसे एक प्याला चाय तो पिलाऊँ, सोचती हुई नीचे रसोई घर में चली गयी ।

बहू को इतने सालों बाद, असम्भावित रूप से अपने सामने पाकर मैं उसे बिलकुल ही नहीं पहचान पाई थी । जब उसे पहचाना तो समझ गयी कि उसके रूप में अत्यधिक परिवर्तन हो जाने पर भी उसका मन अभी भी वैसा ही है । उसके प्रति अपनत्व की भावना मेरे मन में जाग कर सचेष्ट हो उठी । इतना ही नहीं उसे पंहचान पाते ही मेरे मन में अनायास अरूप की स्मृति उभर आई ।

अरूप का हाल–चाल जानने की इच्छा मेरे हृदय में प्रबल से प्रबलतर होती गयी किन्तु वह किसी भी तरह शब्दों में ढलकर बाहर आने की बात की कल्पना नहीं कर पा रही थी । चाय बनाते हुए मैं सोचती रही–''जिज्ञासा तो स्वाभाविक है, पर यह गोपनीयता किसलिए ? गोपनीयता भी किसके सामने ! उस निर्मल, सरल, कोमल स्निग्धता के सामने जिसने मेरे समक्ष अपने हृदय की गहराइयों तक को पारदर्शी करके रख दिया !

''यह मेरी कैसी दुर्बलता ! छिः, नहीं, नहीं ।'' मेरे मन ने कहा । मैं किसी भी प्रकार उस सहज मानवीय जिज्ञासा को शान्त कर पाने का उपाय नहीं सोच पाई ।

''क्या पूछूँगी ? कैसे पूछूँगी ? बहू क्या सोचेगी ?''

जितनी देर मैं चाय बनाती रही, ये ही प्रश्न मुझे घेरे रहे और अरूप मेरे ध्यान में आते रहे । अजीब सी थी मेरी मनोदशा ।

प्रबल जिज्ञासा मानव–हृदय को अस्थिर, विकल और अधीर बना देती है । मैं वह सब सह गयी थी और तुरन्त ही अरूप के सम्बन्ध में मैं बहू से कुछ भी नहीं पूछ सकी थी, रसोई घर में चली आई थी । हाँ, उसके माथे पर चमकती लाल बिन्दी और कलाई को सुशोभित करने वाली महीन सुवर्ण मण्डित कंगनों के बीच सजी दो–दो काँच की चूड़ियाँ मेरे हृदय को चुपके–चुपके आश्वस्त कर गयी थीं कि अरूप जीवित हैं । सच्ची बात तो यह थी कि जीवन की पिछली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लम्बी दौड़ में अरूप कभी मेरे मन पर नहीं छा सके । हिमालय की ऊँचाई की ओर टकटकी लगाए मैं अन्य किसी को देख ही कब पाती थी !

किन्तु इस समय चाय बनाते हुए, थोड़े से एकान्त क्षणों में मैंने आत्मविश्लेषण किया, समझा कि मेरे मन में अरूप के लिए कहीं कुछ कोमल सा है, अन्तस् की गहराइयों में लघु, अत्यन्त लघु एक बीज है, जो पोषकतत्व के अभाव में न तो अंकुरित हो सका, न पनप सका, न विकसित हो सका और न फूल-फल से लद ही सका, पर वह बीज मिट्टी में मिल भी नहीं सका, वह बीज अपने मुरझाए, सूखे अस्तित्व को लिए अब भी वहीं पड़ा है । समय की दौड़ से उठती धूल उस पर छा गयी थी, उसे अदृश्य कर गयी थी । पर मिट नहीं सका था, इस सत्य को मैंने इन क्षणों में समझा । किन्तु समझ कर भी उसे असत्य मान कर स्वयं को प्रवंचित करते हुए मैं उस बीज के अस्तित्व तक को नकार गयी, किसी अन्य के सामने नहीं, स्वयं अपने सामने, छिः, कैसी डूब मरने की बात ! मेरी आत्मलज्जा का भी क्या कोई ठिकाना था !

इस आत्मलज्जा को मुझे अधिक नहीं झेलना पड़ा, मैं चाय लेकर बहू के पास पहुँच गयी । चाय-पान के पश्चात् हम दोनों ही लेट गयीं ।

समय के इतने अधिक अन्तराल के पश्चात् भी बहू का व्यवहार ऐसा खुला-खुला ! बातचीत में ऐसी अन्तरंगता कि मैं तो दंग रह गयी । उसने मेरी ओर करवट कर अपनी दाहिनी भुजा मेरी कमर में पहना सी दी, मेरी ओर गम्भीर दृष्टि स्थिर कर बोली-"सखी ! जितना कुछ तुम्हें जाना है उससे मुझे विश्वास है कि तुम सहृदय हो, कठोर-हृदया तो किसी तरह नहीं हो सकतीं । या तो तुममें संकोच की मात्रा इतनी अधिक है कि तुम्हारे मन की बातें बाहर नहीं आ पातीं, या तुम अरसिक हो । कहीं कुछ गड़बड़ी है जरूर । इसी गड़बड़ी के कारण मेरे स्वामी तुम्हें पाने से चूक गये । तुमको देखकर मैं इतना तो निश्चय रूप से कह सकती हूँ कि तुम अरसिक नहीं हो, पर उस रस को बाहर निकालने के लिए बड़े ही कौशल की जरूरत है । वह कौशल मैं जानती हूँ-मैं-जिसे तुम कठिनाई से "सखी" कह कर पुकार पाती हो, हद है तुम्हारे भी संकोच की ।"

उसने मेरी बाँह खीच, उस पर अपना सिर रखते हुए कहा-"मीठी-मीठी बातें करने के लिए यही मुद्रा, शरीर की इतनी समीपता आवश्यक है । जीवन के इक्षुदण्ड से रस निकालने की कला हर किसी को नहीं आती सखी !"

उसकी आँखें कुछ स्नेहाधिक्य से, कुछ आत्मगर्व से चमक उठीं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी मुद्रा में कुछ पल मौन लेटी वह कुछ सोचती रही ।

विनोद का भाव, प्रसन्नता की चमक उस नेत्ररंजक मुख से संध्याकालीन कान्ति के समान तिरोहित होने लगी ।

"सखी ! मैं कल रात्रि की ट्रेन से दिल्ली जा रही हूँ, वहाँ से दो दिन बाद ही विदेश चली जाऊँगी पुत्र के पास । अब सारी बातें सुनो, और जानों कि हमारे "मिलनों" के अवकाश में क्या-क्या होता रहा और क्या-क्या हो गया । शायद तुम्हारे मन को मैं उतना ही समझती हूँ जितना कि तुम स्वयं । तुम मुझसे दुराव क्यों रखती हो सखी ? अपने मन का सब कुछ मेरे सामने बाहर क्यों नहीं आने देती ? इस प्रकार की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति सदा अच्छी नहीं होती । खैर !........................"

उसके हृदय में उमड़ आने वाली उदासी उसकी आँखों में उतर आई ।

मेरी आँखें झुक गयीं ।

"अरे ! यह क्या ? ऊपर देखो न ।" कहते हुए उसने मेरा मुख ऊपर उठा दिया । इस बार मेरी दृष्टि उसके नेत्रों से जा मिली ।

बिना किसी भूमिका के ही वह कहने लगी-"हम दोनों ही जब कभी अवसर मिलता इन्हीं मौसा जी के यहाँ से तुम्हारा कुशल समाचार जानने का प्रयत्न करते रहते थे और सफल भी हो जाते थे । कई बार ऐसा भी हुआ कि हमें तुम्हारी लखनऊ में उपस्थिति का पता भी चल गया । तुम्हें ताज्जुब होगा जान कर कि हम दोनों ने ही तुम्हें कई बार हजरतगंज में देखा । एक बार तो यहाँ तक हुआ कि तुम लोग पिक्चर देखने गये थे और संयोग से हम भी उसी हाउस में पहुँच गये । वह तो कहो तुमने हमें देखा नहीं । उस दिन मध्यान्तर होने से पहले ही वे मुझे घर वापस ले गये । उनका सदा यही कहना रहा कि अब तुमसे मिलना, तुम्हारे पारिवारिक सुख में उद्वेलन उत्पन्न करना होगा । ऐसी मूर्खता नहीं करनी चाहिए । पता नहीं उसके पति क्या समझें । फिर एकदम कह उठते-

"नहीं, नहीं, मैं उससे कभी नहीं मिलूँगा ।"

इतना कहने के पश्चात् बहू चुप हो रही ।

किन्तु वह मौन टिक नहीं सका-

"आज मैं बहुत सारा समय लेकर तुम्हारे पास आई हूँ सखी ! अब से लेकर सारी रात तुम्हारे ही साथ रहूँगी, कल सबेरे जाऊँगी । कितने दिनों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साध मेरी पूरी होगी ।" कहने के साथ ही उसने अपनी हथेली मेरे माथे पर रख दी–लगा–जैसे वह मन ही मन परम आनन्द से भर गयी है । उस काल उसके नेत्रों में जो प्यार उमड़ पड़ा, वह मैंने केवल अनुराग के नेत्रों में ही देखा था । मुझे कुछ विचित्र सा लगने लगा–तभी वह पुनः कहने लगी–

"तुम्हें क्या कह कर सम्बोधित करूँ ? अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकूँ, ऐसा कोई भी तो सम्बोधन मैं नहीं सोच पा रही हूँ । जाने भी दो–मतलब की बातें कहूँ, आज मैं तुम्हें वह सब बताने आई हूँ जिसे तुम नहीं जानतीं । उन बातों से तुम अनभिज्ञ रहीं, बहुत ही अच्छा हुआ । तुम ऊपर से भले ही पत्थर सी दिखो किन्तु अन्दर से बहुत ही कोमल हो । मुझे ऐसा ही लगता है । उस कोमलता को उघाड़ने की कला मेरे स्वामी को नहीं आती थी । वे अन्तर्मुखी थे । उनका यही स्वभाव उनके जीवन में विष घोल गया । उनके दु:ख–दर्द को जान कर तुम दु:खी होगी, फिर भी मैं बता रही हूँ । यदि नहीं बताऊँगी तो मुझे कभी शान्ति नहीं मिलेगी । जहाँ तक मेरा प्रश्न है मेरे स्वामी मेरे रोम–रोम में बसे हैं । उन सा निश्छल, सच्चा व्यक्ति दुर्लभ है । उन्होंने मुझे मन से स्वीकार किया, किन्तु तुम्हारे रूप में । मुझे कहना नहीं चाहिए किन्तु तुमसे जरूर कहूँगी क्योंकि जो सच है उसे अपनी सखी से छिपाने का पाप नहीं करना चाहिए । ठीक है न ?"

प्रश्न करके वह मेरी ओर देखने लगी–उत्तर पाना चाहती थी ।

मुझे चुप देख कर पुनः बोली–

"उन्होंने आत्म–प्रवंचना की–सोचा कि उन्हें तुम ही मिल गयी हो । 'नाम' का क्या जीवन में इतना महत्व हो सकता है ? तुम्हीं बताओ ! पर मुझे इसका दु:ख नहीं है क्योंकि इसी भ्रम में रमे रह कर उन्होंने सारे सुख पाए । पाँच प्रतिभाशाली पुत्रों के पिता होने का गौरव प्राप्त किया । पर उनका मन फिर भी तुम्हें खोजता रहता था । इस बात को भी उन्होंने मुझ से कभी नहीं छिपाया । उनकी यही अभिन्न–हृदयता मेरे सुख का अमर साधन है ।"

पल दो पल के लिए वह विचारमग्न हो रही–

"अब आगे सुनो, जिस दिन तुम्हारा ब्याह हुआ, हमलोग लखनऊ में ही थे । उन्हें पता चल गया था । बिना निमंत्रण पाए ही एक छोटी सी सोने–चाँदी के मिश्रण से बनी, गंगा–जमुनी बड़ी ही कलात्मक सुन्दर नौका, जिसमें दम्पति का एक जोड़ा और नाविक बने थे, अनाम उपहार के रूप में दे आए ।"

सुनते ही मैं चौंक गयी–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनायास, अनजान में मेरे मुख से निकल पड़ा–

''वह नौका ? वह तो इनको सबसे अधिक पसन्द आई थी । वे जानना चाहते थे कि वह किसका दिया उपहार है ? पर कुछ पता नहीं चल पाया । उन्होंने उसे अपनी बैठक में रख लिया था । जब–जब उसे देखते, कहते–''कितनी भावमय कलाकृति है । लगता है जैसे काव्य धातुरूप में व्यक्त हो उठा है ।''–तुम नहीं जानती सखी, वे बड़े कला–प्रेमी थे । अच्छा तो वह नौका अरूप जी ने भेजी थी ?''

''कहा न, मात्र भेजी नहीं, अपने हाथों उसे दे आए थे । तुम्हारी शादी में बड़ी भीड़ थी, बारात आने ही वाली थी, उस भीड़ में किसका ध्यान जाता ! आकर खुशी–खुशी मुझे बताया, उनकी खुशी आन्तरिक थी, समझ कर अपने अन्दर ही अन्दर मैं आश्चर्य से भर गयी, ऐसे उदार–हृदय ! मेरे पति !''

आत्मसन्तोष और आत्मगर्व की भावनाओं ने बहू को पल भर के लिए पुनः मौन कर दिया ।

''तुम्हारा समाचार उन्हें मिलता रहता, कभी जल्दी, कभी देर में । एक दिन आफिस से लौटने पर बड़े ही पुलकित, रोमांचित, प्रमुदित स्वर में मिठाई का एक डिब्बा मुझे पकड़ाते हुए बोले–

''संजीवनी ! दिव्या ने पुत्रलाभ पाया है । अपना एक और बेटा धरती पर आया । रास्ते में अचानक मौसा जी मिल गये थे, उन्हीं से पता चला । उनके पास पत्र आया है । मैं आश्चर्य से उनका मुख देखती रही, सोचा–''इतना खुश तो मैंने इन्हें कभी नहीं देखा !'' मैंने सबसे पहले उन्हीं को मिठाई खिलाई ।

इस घटना के कुछ समय बाद ही हम सब विदेश चले गए । पर वहाँ भी क्या वे तुम्हें भूल सके ? वर्ष पर वर्ष व्यतीत होते गये उन्हें तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिल सका । भारत लौटने पर हम लोग पहले लखनऊ ही आए । आते ही उन्होंने मौसा जी के यहाँ से तुम्हारा कुशल समाचार जानने का प्रयत्न किया, पता चला कि मौसा जी बाहर गये हैं, तुम्हारे यहाँ हृदय–विदारक क्षति हो गई है ।

नारी–जीवन को दुर्वह बना देने वाली क्षति !

जानने के बाद जब वे लौट कर आए तो दो दिन तक पलँग से नहीं उठे । मेरे द्वारा की गयी सारी अनुनय–विनय व्यर्थ । उनका स्वास्थ्य साल भर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से ठीक नहीं चल रहा था, इसलिए वे जल्दी ही स्वदेश लौटे भी थे। यह आघात सम्भवत: वे सहन नहीं कर पाए। दो ही दिनों में ऐसे सूख गये जैसे वर्षों के रोगी हों।

कहते-कहते बहू रुकी, जैसे आगे बोलने के लिए शक्ति बटोर रही हो।

मैं कुछ पूछने ही जा रही थी कि वह पुन: कहने लगी-

उन्होंने संलाप में सरलता के लिए हम में नाम-भेद स्थापित कर दिया था। मुझे संजीवनी कह कर पुकारते, कहते, तुम सच्चे अर्थ में मेरे लिए संजीवनी हो, तुम्हीं ने तो मेरी प्राणरक्षा की। अभी भी तुम्हीं मुझे जीवित रख रही हो, और उन्होंने तुम्हारा नाम रख लिया-"दिव्या"-कहते, वह दिव्या ही तो है, तभी तो मैं उसे पा नहीं सका। कभी-कभी ये दोनों नाम हम दोनों के लिए विनोद के विषय बन जाते थे।

तीसरे दिन रात में जब मैं उनका माथा दबाते हुए उनका आत्मपीड़न कम करने का प्रयत्न कर रही थी तो मेरी हथेली अपनी आँखों पर रखते हुए कहने लगे-"संजीवनी ! अब दिव्या कैसे जिएगी ? कैसे ? मैं भी तो कुछ नहीं कर सकता, कर ही क्या सकता हूँ ?"

"और वे सच ही कुछ नहीं कर सके सखी !"

सुनते ही मुझे पता नहीं कैसा तो लगा कि मैं एक झटके से उठती हुई व्याकुल-कण्ठ बोल पड़ी-

"क्या हुआ तब ?"

बहू ने जबर्दस्ती मुझे लिटा लिया।

पता नहीं कहाँ का धैर्य वह पकड़ लाई थी। बोली-

"सब बताती हूँ सब, घरवालों ने, पुत्रों ने और मैंने उनको स्वस्थ करने के लिए रात-दिन एक कर दिया, क्या-क्या नहीं किया।

जीवन के उस पार जाने के कुछ दिन पहले रोग से जूझते हुए वह अपनी दिव्या को देखने के लिए व्याकुल हो उठे। मैं जान गयी कि यह उनकी प्रबल आकांक्षा है, मुझे तुम्हारा पता मालूम था, मैंने उनसे पूछा-"दिव्या को तार दे दूँ ? किसी को भेज कर बुलवा लूँ ?"

मेरे हाथ कस कर पकड़ते हुए दृढ़ स्वर में बोले-"नहीं", संजीवनी ! नहीं। ऐसा कभी भूलकर भी मत करना। उसके उस रूप को मैं सह नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाऊँगा । कैसे भी नहीं सह पाऊँगा, उसी क्षण मर जाऊँगा । इसके अलावा, यदि तुमने उसे बुलाया वह नहीं आ पाई, या जानबूझ कर नहीं आई तो इस एक जन्म की आत्मलज्जा तो मैं किसी प्रकार झेल ले गया, किन्तु वह आत्मलज्जा तो फिर जन्म-जन्म मेरा पीछा करती रहेगी..''

''अरूप जी मुझे ऐसी कठोर ऐसी हृदयहीन समझते रहे ?''

मेरे मुँह से अचानक निकल गया । मेरे नेत्रों में जल उमड़ आ रहा था, किन्तु मैंने बाँध लगा लिया । तो भी कुछ बूंदें छलक कर बाहर आ ही पड़ीं ।

बहू सीधे लेट गयी । उसके दोनों हाथ जुड़े हुए उसकी छाती पर टिक गये और दृष्टि छत में अटक गयी । मैं समझ गयी कि वह इस समय दृष्टि मिलाने का साहस नहीं कर पा रही है । मैं कुछ भी नहीं समझ पा रही थी कि अरूप जी का क्या हुआ? मेरी ऊपर की श्वास ऊपर और नीचे की श्वास नीचे ही रुक सी गयी, तभी वह पुनः कहने लगी-

''मैं ठीक-ठीक समझ नहीं पाई कि वे क्या समझते थे, कैसे बताऊँ ?

पल भर चुप रह कर फिर खोई-खोई सी बोली-''उन्होंने तुम्हें बुलाने नहीं दिया, मैं मन मसोस कर रह गयी, और वे ? वे अपने नेत्रों में अपनी आकांक्षित मूर्ति की छबि लिए, हृदय में दिव्या के दर्शनों की लालसा लिए जीवन के उस पार चले गये, सखी ! वे चले गये ।''

सुनते ही जैसे अचानक भूकम्प आ गया । उलटती, पलटती चक्कर खाती मैं न जाने किस मनोदशा में पहुँच गयी ।-उस भूकम्प के शान्त हो जाने के कुछ पल बाद मैंने पूछा-

''सखी ! सच ? अरूप जी सच नहीं रहे ?''

कैसा मूर्खता भरा प्रश्न था मेरा !

पर कैसी मूर्खता ! और कैसा ज्ञान ! उस काल तो मैं सच ही हतबुद्धि हो रही थी ।

उस मर्मान्तक अमिट सत्य को बहू की वाणी पुनः नहीं कह सकी । मेरे वक्षःस्थल में मुँह छिपा कर वह बिलख-बिलख कर रो पड़ी ।

उसका मुख अपनी छाती से चिपकाए मैं स्थिर पड़ी रही । और मेरा हृदय रोते हुए चीख कर कहने लगा-''हे राम ! यह क्या हुआ ?''

यह वेदनाग्रस्त दशा अधिक देर नहीं टिक पाई । संध्या हो आई थी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरी बहिन पड़ोस के घर से वापस आ गयी थी, उसका आना हम लोग जान नहीं पाए ।

हमारे पास खड़ी वह विस्मय से पूछ रही थी–

"अरे ! तुम दोनों रो क्यों रही हो ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं, यों ही कुछ पुरानी बातें याद आ गयी थीं"– मैंने कहा । हम दोनों ही सहज हो जाने का प्रयत्न करती, उठ कर बैठ गयीं ।

उस रात बहू किसी तरह नहीं मानी, सारा भोजन उसी ने बनाया, बोली– "सखी ! यह मेरी वर्षों की साध है । आज मैं वे ही सारी चीजें बनाऊँगी जिनकी फरमाइश वे जब तब करते थे । अपने सामने तुम्हें बैठा कर अपने हाथ से परोस कर वे चीजें तुम्हें खिलाऊँगी । बाधा मत देना । यह सुख मुझे पा लेने देना– मैं समझूँगी कि मैंने उन्हीं को खिलाया है । फिर कब ऐसा अवसर आने का ? मुझे रोकना मत, सखी ! रोकना मत ।"

मैं उसे रोकती भी कैसे ?

सारे घर के भोजन कर लेने पर उसने मुझे वे सारे व्यंजन खिलाए जो उसने रच–रच कर तैयार किए थे । पूरे समय मेरे पास बैठी साग्रह वह मुझे खिलाती रही । मैंने मन ही मन उस पति के भाग्य को सराहा जिसे ऐसी पत्नी मिली थी ।

उस दिन के भोजन में कैसा रस था ! क्या बताऊँ ! मेरे भोजन कर चुकने पर ही वह स्वयं खाने बैठी ।

रात्रि में एक ही पलँग पर लेटे हुए, इधर–उधर की चर्चा करते हुए, चतुर्दिक् सन्नाटा व्याप्त हो जाने पर बहू अचानक कुछ देर के लिए मौन हो एकटक मुझे देखती रही–फिर मेरे गले में बाहें डालकर बोली–

"प्रिय मिले हैं आज मेरे ।"

शायद मेरा मुँह लाल हो उठा था, इसीलिए वह हँस कर बोली–"अरे ! तुम तो शरमा गयी, मेरा व्यवहार तुम्हें कुछ विचित्र सा लगता है न ? मैं हूँ ही कुछ विचित्र, सदा से ही कल्पना में जीती आई हूँ । सखी ! सच पूछो तो कल्पना ही जीवन है । इसमें बड़ी शक्ति है, कितनी मधुर है यह ! जो पास नहीं, उसे पास पा लो, जो कभी नहीं मिला, उसे नित्य पा लो । इससे अधिक वांछित वस्तु और क्या हो सकती है ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके मुख पर करुण मुस्कान उभर आई । उत्तर में मैं भी किंचित् मुस्करा दी । सोचा—"कैसा विचित्र, अद्भुत व्यक्तित्व है इस बहू का ! इस गहरे दु:ख में भी विनोद ।"

अच्छा सखी ! अब एक महत्वपूर्ण बात तुमसे कहने को रह गयी है । उसे न कह सकी तो जीवन भर घोर अशान्ति झेलनी पड़ेगी । बहुत कुछ, जिसे कहने की शक्ति मैं नहीं पा रही थी, कह गयी । कुछ अंश कहने को शेष रह गया है, वही गम्भीरतम अंश है । मेरे मन जुड़ने और टूटने का, सुनो सखी, ध्यान से सुनो, मुझे "सखी" शब्द अत्यन्त प्रिय है, इसका प्रयोग मैंने केवल तुम्हारे लिए किया है, यह शब्द मुझे इतना प्रिय क्यों है ? यह भी एक रहस्य है । मेरा विश्वास है कि मैं पूर्व जन्मों में ब्रजमण्डल—वासिनी थी । कृष्ण—भक्ति की प्रेममय भूमि में ही मेरा जीवन बीतता रहा है, इसीलिए मैं प्रेम को ही जानती—पहचानती हूँ, मेरे लिए वही सब कुछ है । हमारे प्रेम का क्षेत्र बड़ा व्यापक है, उसमें जड़—चेतन सभी आ जाते हैं । मुझे तो ऐसा लगता है कि वे पार्थिव और सूक्ष्म तत्त्व जिनसे मेरी निर्मिति हुई है उन सबके मूल में प्रेम ही है, अवश्य ही मैं अपने जन्म—जन्म के संस्कार इस जन्म में भी साथ लाई । यदि न लाती तो बड़ा ही अनर्थ हो जाता, ईर्ष्या में जलती—भुनती मैं स्वयं तो जल ही मरती, उनको भी वर्षों पहले मार डालती ।" कहने के पश्चात् बहू मौन हो रही, कुछ पल आँखें बन्द किए पड़ी रही ।

जिज्ञासुमना मैं उसे देखती रही, सोचती रही, "यह और क्या कहना चाह रही है ? ऐसा अब और क्या रह गया है जो इसके मन में उमड़—घुमड़ रहा है ?"

सहसा उसने आँखें खोल दीं, मेरी ओर देखा, मेरी हथेली अपनी मुट्ठी में कस कर पकड़ बोलीं—"अच्छा, अब सुनो ।"

प्रिय—मिलन की प्रथम रात्रि में मैंने सब कुछ खोकर भी सब कुछ पा लिया था । उसी रात की बात है उन्होंने मुझे अँगूठी पहनाई और एक दूसरी अँगूठी, एक छोटी सी चाँदी की डिबिया में रखी हुई दिखाई—कहा—"तुमसे कुछ भी छिपाना नहीं चाहता, इसलिए यह बात भी नहीं छिपाऊँगा, यह अँगूठी मैंने उसी के लिए बड़ी ललक से बनवाई थी । देखो, देखो, ध्यान से देखो, इसके बीचोबीच लाल जड़ा है और चारों ओर हीरक कण, उस समय मैंने स्वप्न तक में नहीं सोचा था कि यह अँगूठी मेरी जिन्दगी की प्रतीक है, अब इसे तुम अपने पास रख लो ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने वह अँगूठी हाथ में ले ली, देखती रही, उनके प्रतीक को समझ गयी, उनका हृदय और हीरक कणों के रूप में आँसू । मैंने अँगूठी डिबिया में बन्द करके पूछा–"अब इस अँगूठी का क्या करना है ?"

मेरा प्रश्न सुनकर वे सोच में पड़ गये–थोड़ी देर में बोले–"यदि कभी कोई उपयुक्त अवसर आए तो यह अँगूठी मेरी ओर से तुम उसे पहना देना ।"

इस अँगूठी के सम्बन्ध में मैंने फिर कभी कोई प्रश्न उनसे नहीं पूछा, हालाँकि उनके कहने का अभिप्राय मैं कभी नहीं समझ सकी । वे चाहते क्या थे ? उनकी क्या कल्पना थी ? क्या संकेत था ? मैं कभी जान नहीं सकी । कभी पूछ भी नहीं सकी और.................................।

उनके न रहने पर जो कष्ट मुझे घुलाने लगा उसमें तुम्हारा प्रसंग बरबस मिल जाता । मैंने बहुत सोचा, अन्त में निर्णय लिया कि उनकी सारी बातें तुम्हें बता दूँगी और उनकी लालसा पूरी करने का प्रयत्न करूँगी । हो सकता है कि पत्थर हो रहा हिम मेरे इस प्रयत्न से पिघल जाए, तरल हो बह जाए । मेरा हृदय और उनकी आत्मा भारमुक्त हो सके । हो सकता है तुम इसे मेरा पागलपन, मेरी दीवानगी समझो, पर मैं यह पहना कर जीवन में परम सन्तोष पा सकूँ, उनकी आत्मा को शान्ति दे सकूँ । पूरी करोगी मेरी यह इच्छा ?"

प्रश्न करते हुए उसकी आँखें डबडबा आईं, अपने बटुए से डिबिया निकाल कर मेरे हाथ में देती हुई बोली--

"लो पकड़ो, खोल कर देखो ।"

वह डिबिया मैंने उसके हाथ से ले ली, खोली, झलमल चमकती अँगूठी–बीच में जड़ा लाल और चारों ओर हीरक–कण ।

मेरी दृष्टि बहू की ओर उठ गयी, उसके मुख से झाँकती दयनीय कोमल स्मिति और आशा की कान्ति से घिरी दृष्टि, मेरे सर्वांग में कम्पन उत्पन्न कर गयी ।

मुझे अपनी ओर देखते हुए देख कर वह बोली–

"बोलो, बोलो सखी ? पहन सकोगी यह अँगूठी ? उनकी तरफ से मेरे हाथ से ?"

मैं तुरन्त कुछ भी नहीं कह पाई, मौन रह गई–

उत्तर की व्याकुल प्रतीक्षा में वह मेरी ओर एकटक देखती रही ।

मैं असमंजस में पड़ गयी थी । कुछ समझ नहीं पा रही थी । तभी मेरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि कहने लगी-"तुम अनुराग की पत्नी हो, हिमालय की प्रिया, उनकी ऊँचाई, उनकी उदारता, उनके हृदय की कोमलता क्या भूल गयी हो ?"

मैं जैसे सोते से जाग पड़ी । अपना दाहिना हाथ बहू के आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा-"सखी ! तुम्हारी इच्छा जरूर पूरी करूँगी । और दे सकूँगी वह सन्तोप और शान्ति जिसकी कामना तुम करती हो । मेरा हाथ तुम्हारे सामने है- पहना दो अँगूठी ।"

आत्मसन्तोष एवं आनन्दातिरेक से उसका मुख खिल उठा ।

मेरा हाथ अपने हाथ में ले, मेरी उँगली में अँगूठी पहनाते हुए बोली- "सखी ! तुम्हारे मन को अच्छी तरह समझती हूँ । तुम्हारे मन पर आत्मग्लानि की धूल और अधर्म-भावना की श्यामता नहीं पड़ने दूँगी, तुम उनसे मुक्त रहो । मैं यह अँगूठी उनकी ओर से तुम्हें पहनाऊँगी ? ऐसी स्वार्थी लगती हूँ मैं तुम्हें ? तुम्हें अपने हाथ से अँगूठी पहनाने की अभिलाषा उनकी थी । पर अधर्म करने की नहीं । आज यह अँगूठी मैं तुम्हें पहना रही हूँ, अपनी ओर से । मैं अपने स्वामी की अर्द्धांगिनी, अपनी सखी को, "दिव्या" को यह अँगूठी पहना रही हूँ, उनका दिव्य प्रेम पूर्ण-काम हुआ, वह प्रेम, जो पाप-पुण्य के झगड़े से, द्वन्द्व से सर्वथा मुक्त है । तुम्हारा मन निर्मल रहे । यह मेरी निशानी है, तुम्हारी अनन्य सखी की निशानी ।"

अँगूठी पहना देने के पश्चात् बहू ने मेरा हाथ माथे से लगाया, कुछ सोच कर अँगूठी पर अपने ओष्ठ रखे और धीरे से मेरा हाथ छोड़ दिया ।

इस व्यापार के मध्य मेरी उँगली में अँगूठी और नेत्रों में जल-बिन्दु चमकने लगे ।

उन जलबिन्दुओं को शायद बहू ने देखा नहीं, वह आँखें बन्द कर लेट गयी थी । सम्भवतः उसे बहुत कुछ स्मरण हो आया था । यह स्थिति अधिक देर नहीं रही ।

अधिक समय नहीं बीत पाया था कि उसने मेरी ओर करवट कर ली, मुग्ध दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए मेरे समीपतम खिसक उसने अँगूठी वाली मेरी उँगली को पकड़ कर उसे देखते हुए कहा-"सखी ! सच मानों आज मुझे ऐसा लग रहा है कि जैसे मैं एक बार फिर उन्हें देख रही हूँ । कैसा गहरा प्यार हो गया था उन्हें तुमसे । वे स्वयं आश्चर्य करते हुए कभी-कभी हँस कर कह बैठते थे-"एक-पक्षीय प्रेम का कैसा निराला उदाहरण है यह ! कोई जाने तो मुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पागल समझे । पर तुम ऐसा नहीं समझती हो न ?

सुनकर मैं हँस पड़ती, नकारात्मक सिर हिला देती ।

मुझे वे बेहद प्यार करते थे, प्यार करते हुए मुझे दिव्या ही समझ लेते, कहते–तुम दिव्या ही तो हो, क्या नहीं हो ? मैं स्वीकारात्मक सिर हिला देती और उनके प्यार में डूब जाती । जब उस प्यार में डुबकी लगा कर बाहर आती, सोचती–हँसती, मन ही मन कहती–''मुझे तो अपने पति के प्यार से मतलब है, विश्वास और अभिन्नता से मतलब है । ये सब तो मुझे भरपूर मिले हैं, वे मुझे 'दिव्या' समझें या 'संजीवनी' ।

सखी ! ये सब जानकर तुम अप्रसन्न तो नहीं हो रही हो ? अकस्मात् उसने प्रश्न कर दिया ।

''नहीं, तनिक भी नहीं''–मैंने कहा ।

बहू चुप हो गयी, वह कुछ और भी पूछना चाह रही है, मैंने समझा–सोचा–''यह मेरे बारे में, अनुराग के बारे में जानना चाहती होगी । किन्तु पूछ नहीं पा रही है, सोचती होगी कि पुराने घावों को छेड़ना ठीक नहीं । मैंने कुछ कहा नहीं, कुछ पूछा भी नहीं, पता नहीं क्यों उस समय कुछ भी बोलने का मेरा मन ही नहीं हो रहा था । तभी उसने अपनत्व में उभ–चुभ करती निगाह से, बड़ी ही अन्तरंगता से अति मन्द स्वर में पूछ ही लिया–

''मैंने अपना सारा दुःख–सुख कह डाला, पर तुमने अपने सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बताया । जाने दो–केवल इतना बता दो कि तुम विवाह के बाद सुखी तो थी ? उनको यह चिन्ता भी सताया करती थी ।''

इस प्रश्न को सुनकर मैं चुप नहीं रह पाई, झट से उत्साहमना कह उठी, ''सखी ! मैं सुखी थी–बहुत सुखी ! संसार में ऐसा भी सुख हो सकता है ! मैं कल्पना तक नहीं कर सकती थी ।''

सुनते ही उसका मुख खिल उठा, बोली–''आज उनकी आत्मा को सुख–चैन–शान्ति मिली होगी । इस समय मैं कितनी, कितनी खुश हूँ ! तुम्हें कैसे बताऊँ ? इस समय मैं उनका अभाव भूल गयी हूँ, लगता है वे मेरे पास ही आ गये हैं, मुस्करा रहे हैं ।''

पता नहीं कैसी स्निग्ध ढलान पर बहू फिसल गयी । उसने मेरा ऐसा प्यार–दुलार किया कि क्या बताऊँ !

प्रतिक्रिया के रूप में मैं कुछ भी नहीं कर पाई, निर्विरोध, आत्म–समर्पण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने अवश्य किया । निस्सन्देह उस समर्पण में स्वागत का भाव मूक रहकर बहुत कुछ कह गया होगा । प्यार की उस वर्षा में मैं अपने अतीत में एक बार पुनः पहुँच गयी थी ।

उस आवेग के शान्त होने पर वह उठ कर बैठ गयी ।

''आज की रात मैंने तुम्हें सोने नहीं दिया, देखो सबेरा होने जा रहा है ! न सो पाने से तुम्हें तकलीफ तो नहीं हो जाएगी ?''

''नहीं बिलकुल नहीं । ऐसा रात्रि-जागरण कितनों को नसीब होता है !''

मेरी बात सुनकर उसने पलभर मेरी ओर अविश्वास से देखा, फिर वह अविश्वास किधर उड़ गया, पता नहीं । पुलक से भर मेरे वक्षःस्थल में मुख छिपाते हुए बोली-''आज मैं धन्य हुई । तुम सच ही ऐसा सोचती हो ?''

उत्तर में मैंने मौन रहकर ही स्वीकारात्मक सिर हिला दिया ।

बहू ने अपना मुख उठाया, परमतृप्ति से भरी दृष्टि से वह मूक रह कर ही पल भर मेरी ओर देख कर बोली-

''मैं बड़े भारी भ्रम में थी, वह भ्रम मेरे मन पर कठोर असह्य बोझ बन गया था । आज उस भार से मुक्त हुई । मैं सोचती थी कि तुम संगमरमर की एक चट्टान हो जिस पर तरल धारायें सिर पटक-पटक कर दूसरी दिशाओं में बढ़ जाती हैं । मैं अपने को भी एक ऐसी ही धारा समझती रही ।

मैंने बहू को आगे नहीं बोलने दिया । उसके मुख पर अपनी हथेली रख दी । तत्क्षण उसकी कोमल हथेली उस हथेली पर आ गयी, उसका स्वागत करती, उससे न हटाने का अनुरोध करती । मैंने उस हथेली को अपने हाथ में ले लिया । मेरे मन में भावनाओं का ज्वार सा उठने लगा किन्तु प्रकट नहीं हो सका । अन्दर ही अन्दर उद्वेलित हो रह गया ।

सहसा मैंने विषयान्तर करते हुए कहा-

''सखी ! अब कुछ बच्चों के बारे में बताओ न ।''

सुनते ही वह मुक्त-हास्य कर उठी, शान्त होने पर बोली-''अहोभाग्य ! चलो, तुम अपनी ओर से कुछ बोलीं तो ।''

बच्चों के बारे में ? अब तो वे सभी बड़े हो गये । सब के सब विदेशवासी हैं । इतनी ही गनीमत है कि सब का ब्याह भारत में ही हुआ है । उनकी ओर से मुझे पूरा सन्तोष है । तुम्हारी गोद में तो एक ही पुत्र आया, सुनने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में आया कि बड़ा योग्य निकला है, और उसकी बहू तो फुलझड़ी है–फुलझड़ी। वे दोनों भी तो विदेश में हैं। हैं न ?''

सुनकर मैं ताज्जुब में आ गयी।

''तुम्हें ये सब कैसे पता ?'' मैंने पूछ ही लिया।

तुम्हारी एक मित्र से, मानिनी से। तुम्हारे साथ पढ़ती थी। पढ़ती थी न ?''

मुझे मानिनी की अच्छी तरह याद थी, उससे मेरी जब--तब भेंट होती रहती थी।

''हाँ, पढ़ती थी, मेरी मित्र थी''–मैंने बताया।

बहू ने बैठे हुए ही मेरी कलाई कस कर पकड़ी, एक रहस्यमयी मुस्कान उसके मुख पर स्थिर हो गयी।

''तुम्हें एक बात बताऊँ ?'' अपने मन की बात तुम मुझसे खुल कर नहीं कह पातीं, जो कुछ तुम कह नहीं पाती, पूछ नहीं पाती, उस सबको मैं जान जाती हूँ। है न ? देखो, तुम मेरे स्वामी के बारे में जानना चाहती थी–पर किसी तरह नहीं पूछ पायी। मैं सब समझ रही थी। मेरे माथे पर लाल बिन्दी और हाथों में काँच की चूड़ियाँ देख कर तुम्हारे मुख पर निश्चिन्तता और सन्तोष की जो कान्ति चमकी उसे देख कर मैं अपना साहस खोने लगी थी, सोचती रही थी कि कैसे क्या बताऊँ ! तुम्हारी मुख कान्ति की आड़ से जो एक सात्त्विक प्रसन्नता झाँक रही थी उसे देख और समझ कर मुझे एक अनजाने सुख का अनुभव हुआ। मेरे पति का तुम्हारे प्रति निःस्वार्थ आत्मदान व्यर्थ नहीं गया। तुम्हारे मन की अभेद्य पर्तों के नीचे उनके लिए गहरी शुद्ध मानवीय संवेदना छिपी है, आज यह विश्वास मुझे हो गया। तुम्हारे भ्रम को तुरन्त ही तोड़ कर चूर-चूर कर देने की शक्ति मैं कहाँ से पाती ? सोचा कि सुख–स्वप्न जितना लम्बा हो, अच्छा। किन्तु सत्य को कब तक छिपाती उस सत्य के प्रकाश में आते ही तुम्हारी मुख–कान्ति मलिन पड़ गयी, तुमने यह सब नहीं देखा, मैंने देखा और समझा भी।

मेरी इन चूड़ियों और बिन्दी की अपनी कहानी है। सुनोगी ?''

इस प्रश्न से मेरी जिज्ञासा खुल कर बाहर आ गयी। मैंने कहा–''जरूर सुनूंगी।''

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतीत की दिशा से विषाद का मेघ-खण्ड उड़ता हुआ आया और बहू के मुख को श्याम बना गया-

"सुनो-उनका अनुरोध था कि मैं काँच की चूड़ियाँ हमेशा पहनती रहूँ-वे अपना "अन्त" समझ गये थे । चूड़ियों-भरी मेरी कलाई अपने हृदय पर रख कर बोले थे-"संजीवनी ! इन कलाइयों में काँच की चूड़ियाँ हमेशा रखना, मेरी इतनी बात मानना । इस अनुरोध के पीछे एक मार्मिक कहानी है, बताना भूल गया, और अब आज बता पाने की शक्ति नहीं ।"

इतना कहते ही बहू की आँखों से टपटप आँसू बहने लगे किन्तु उसने शीघ्र ही उन पर रोक लगा दी । तुरन्त ही उन जलबिन्दुओं को आँचल से सुखा कर पुनः कहने लगी-"नहीं जानती कि कौन सी वह मार्मिक घटना थी जिसकी यादगार में ये काँच की चूड़ियाँ अब भी मेरी कलाइयों को घेरे हैं, खैर, सुनो-

"अपनी सबसे छोटी बहू है न ! बहू क्या जीता जागता स्नेह है, भक्ति है । पीछे पड़ गयी, बोली-"माँ ! हम पाँच बहुओं के माथे पर बिन्दी तभी चमकेगी जब उनका प्रतिबिम्ब तुम्हारे माथे के दर्पण में दिखाई पड़ेगा !"

"सखी ! क्या बताऊँ, जब तक उसने मेरे माथे पर रोली का टीका नहीं लगा लिया, पाँचों की पांचों सूना माथा लिए मेरे सामने डोलती रहीं । मैंने घबड़ा कर आँखें बन्द कर लीं और तब उसी छोटी बहू ने मेरे माथे पर बिन्दी लगाते हुए कहा, यह हम सबका प्यार है, इसे हमेशा-हमेशा ऐसे ही चमकने देना, तुम्हें हम सबकी कसम है ।

मैं करती क्या ! जब तक जीवित हूँ, ये चूड़ियाँ और यह बिन्दी मेरे साथ है, मेरे लिए अनिवार्य है ।"

कुछ देर मौन रह कर बहू मुस्कराई, बोली-मेरी जिज्ञासा का समाधान कर सकोगी ? शुद्ध जिज्ञासा--तुम अपने पति का नाम कैसे लेती हो ?"

एक दृश्य, मेरे प्रिय का विहँसता मुख कल्पना में आया, वे कह रहे थे-"मनकी ! आज से तुम मेरा नाम लेकर मुझे पुकारोगी, मैं यही चाहता हूँ ।"

मैंने पूरी बात बहू से नहीं कही, मात्र इतना कहा-"सखी ! यह मेरे पति का आदेश था, उन्हीं की चाह थी ।"

"अच्छा !" बहू ने हँस कर कहा ।

इसके आगे बातचीत नहीं हो पाई । सबेरा हो गया था ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"अच्छा ! अब उठ जाने की तैयारी करूँ", कहते हुए उसने मेरी ओर देखा, शायद कुछ पाने की, कुछ सुनने की इच्छा से, पर मैं तो उस समय कहीं और ही पहुँच गयी थी–कुछ भी नहीं कह पाई और बहू उठ गयी । जाने की तैयारी में लग गयी ।

अवश्य ही मेरे पास से जाने की कल्पना से ही वह कुछ और अधिक प्रेमविह्वल, अधिक भावुक हो उठी । नीचे आने के पहले सहसा उसने मुझे अपनी बाहों में कस लिया मेरे मुख पर उसने कितने प्रेम–चिन्ह अंकित किए, मैं जान नहीं पाई, उसके प्रेमप्रवाह में जो गति, जो तीव्रता थी वह मुझे स्तम्भित कर गयी । मेरी बाँहें अपने हाथों में पकड़े वह कुछ निमिष मुझे देखती रही, कदाचित् प्रतिदान की इच्छा से या आशा से । उस समय मैं समझ नहीं पाई । फिर मेरी बाँहों को छोड़कर अश्रुसिक्त दृष्टि और अवरुद्ध कण्ठ से वह अति मन्द–स्वर में बोली–"सखी ! यह विदा शायद अलविदा है ।"

उसी समय मेरी बहिन ने आकर कहा–"दीदी ! वह लड़का इन दीदी को बुलाने आया है ।"

सुनते ही हम दोनों सीढ़ियों की ओर बढ़ गयीं । बहू को देखते ही वह बालसेवक बोला–"बहू जी ! आज ड्राइवर ने छुट्टी ले ली है, गाड़ी लेकर भइया जी आए हैं, जल्दी करने को कहा है ।"

मौसा जी पूजा घर में थे । पूजा–घर की देहरी पर माथा टिकाने के पश्चात् हम दोनों के ही सामने हाथ जोड़ बहू मुख्य द्वार की ओर चल दी ।

मुख्य द्वार से सड़क की ओर बढ़ने के पूर्व बहू ने जिस दृष्टि से मुझे देखा वह मुझे कम्पित, रोमांचित कर गई, उस दृष्टि में कोई अपूर्ण चाह थी, कोई आशा थी, कुछ मूक कामनाएँ थीं । मैंने वह सब समझने में बहुत देर कर दी थी ।

मुख्य द्वार पर खड़ी मैं उसका जाना देखती रही । किसी प्रकार अपने को संयत किए रही, उमड़ कर बाहर आने के लिए विकल भावावेग पर बाँध लगाए रही–किन्तु कार की खिड़की से झाँक कर मेरी ओर एकटक देखती, बहू को देखते हुए अचानक मेरा हृदय टूक–टूक होने लगा ।

मेरी ओर देखती हुई ही वह चली गयी, उसका यों चला जाना जैसे एक प्रलय मचा गया । मेरा मन कचोटने लगा, प्रतीत हुआ कि सूर्य के प्रचण्ड ताप से तप्त, प्यासी धरती पर जल–भरे मेघ छाए रहे । धरती, प्यासी धरती की आशा–भरी दृष्टि उन मेघों की ओर उठी रही, अब बरसेंगे, अब बरसेंगे, पर मेघ ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या वे बरसे ? नहीं न ! बिन बरसे ही छाए रहे, केवल छाए, और धरती ?

प्यासी धरती, मुरझा गयी, प्यासी ही रह कर सूख गयी, उसका अन्तस्थल दरक गया ।

"हाय रे संकोच की शिलाओं में बन्द मेरे पत्थर मन ! तू विदीर्ण क्यों न हो गया ?"

बहू चली गयी । अब कहूँगी कि मेरी परमप्रिय अन्तरंग सखी चली गयी । उसकी उपस्थिति में मेरी भावनायें सोती रहीं, और उसके जाते ही जीवन्त हो उठीं । आत्मसंताप, आत्मभर्त्सना से व्यथित मैं अपना भारी मन लिएं आकर उसी पलँग पर पड़ रही जिस पर बहू का प्यार मुझ पर बरसता रहा था । उन्हीं विकल एकाकी क्षणों में एक तूफानी दृश्य मेरी कल्पना में प्रत्यक्ष हो उठा । मैंने देखा–

जीवनान्त के क्षणों में अरूप जी भयंकर, सर्वहारी तूफान में फँस गये हैं, मृत्यु से लड़ते हुए, मुझे, केवल मुझे ही पुकार रहे हैं । उस पार जीवन के उस पार पहुँच जाने के पहले मुझे, केवल मुझे देखना चाह रहे हैं । और मैं ? मैं उस सबसे बेखबर, उसी क्षितिज–व्यापी अनन्त विशाल विश्व–समुद्र के तट पर, उसकी गिरती उठती लहरों में खोई रही, उसके एक कोने में मूक खड़ी रही, खबर तब मिली, जब वह पुकार विलीन हो चुकी थी–

इस दृश्य को, हृदय–विदारक दृश्य को कल्पना में देख कर अरूप जी का सब कुछ समझ कर मैं सन्न हो रही, लगा कि जैसे मैं स्वयं ही एक भीषण तूफान में फँस गई हूँ !

पर मैं तो जीवन का सबसे विकट तूफान झेल चुकी थी, इसको भी किसी न किसी प्रकारं झेल ले गयी ।

किन्तु आज ! पितृपक्ष के प्रथम दिन–पूर्णमासी के दिन, अनुराग की रागमयी भक्ति में डूबा मेरा मन, बार–बार अरूप जी की स्मृति में विकल होने लगता है, मैं उसे विस्मृत कर देना चाहती हूँ, पर कर नहीं पाती । रोकने पर भी मेरा मन उस अलौकिक देव–पुरुष के लिए करुणा में डूबने लगता है । मेरा सारा आत्मसंयम व्यर्थ जाता है·

"ऐसा क्यों ?" मेरा मन मुझसे ही पूछने लगता है ।

"मैं क्या उत्तर दूँ ?"

उत्तर सोचते हुए मैं स्वयं इस प्रश्न में, अनन्त प्रश्न में उलझ जाती हूँ–

"यह कैसा मन ? अरे ! यह कैसा मेरा मन ??

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi